

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक	विषय-सूची		
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा पोस्ट—महोबाजार जिला—गोंडा, उ०प्र०	कविता	लेखक	पृष्ठ
	बकवाद मत बढ़ाओ मानव तू कितना महान	अज्ञात श्री प्यारे लाल साहू	1 47
आदि संपादक सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब	स्तंभ		
	पारख प्रकाश / 2 बीजक चिंतन / 33	व्यवहार वीथी / 16 आदर्श जीवन / 48	परमार्थ पथ / 26
संपादक धर्मेन्द्र दास	लेख		
आदि व्यवस्थापक प्रेम प्रकाश	अच्छा होता है राम तजू पै गुरु न बिसारूं ...ताहि बोड तू फूल! लोग आपकी क्यों नहीं सुनते? आडम्बरवाद घर सच्चा धन क्या है? मन और उसका स्वरूप	डॉ. रणजीत सिंह देवेन्द्र दास पं. श्रीकृष्णदत्त जी भट्ट श्री दीपक चोपड़ा श्रीमती रजनीश सौम्येन्द्र दास रामदास	6 7 13 19 21 23 35 38
मुद्रक एवं प्रकाशक गुरुभूषण दास	कहानी		
पारख प्रकाश इंटरनेट पर www.kabirparakh.com	अनजाना सफर	श्री भावसिंह हिरवानी	28
वार्षिक शुल्क—50.00 एक प्रति—13.00 आजीवन सदस्यता शुल्क 1250.00			

निवेदन

. पारख प्रकाश के सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे अपने ग्राहक नं. के साथ अपना मोबाइल नं. अवश्य दर्ज करवा दें जिससे शुल्क प्राप्ति, शुल्क समाप्ति तथा पत्रिका भेजने की सूचना आपको आपके मोबाइल नं. पर भेजी जा सके।

. विभिन्न प्रदेशों में अनेक नये जिले बन जाने के कारण कई ग्राहकों को समय पर पारख प्रकाश नहीं मिल पा रहा है। जिन ग्राहकों के जिले बदल गये हैं वे अपने ग्राहक नं. के साथ नये जिले का नाम पिन कोड सहित अवश्य सूचित करें, ताकि आपके पते पर आपके नये जिले का नाम दर्ज किया जा सके, जिससे आपको समय पर पारख प्रकाश मिलने में सुविधा हो।



सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
— सन्त कबीर



संशय सब जग खण्डिया, संशय खण्डे न कोय।
संशय खण्डे सो जना, जो शब्द विवेकी होय ॥ बीजक, साखी ८८ ॥

वर्ष 47]

इलाहाबाद, वैसाख, वि. सं. 2074, अप्रैल 2018, सत्कबीराब्द 619

[अंक 4

बकवाद मत बढ़ाओ

साधू का बेष धरके, ज्ञानी जो तुम कहाओ।
अतिशय उदार अपना, अन्तःकरण बनाओ॥टेक॥
कर्तव्य अपना पालो, यह नियम को सम्हालो।
दुरमति को दूर टालो, सुकृत सदा कमाओ॥ 1॥
एक सत्य व्रत धारो, कामादि रिपु निवारो।
बनि शुद्ध ब्रह्मचारी, विषयों से मन हटाओ॥ 2॥
पैसा न पास जोड़ो, आशा जगत की छोड़ो।
तृष्णा से मुख को मोड़ो, माया में मत भुलाओ॥ 3॥
निज कर्म की कमाई, यह तिल घटे न राई।
सुख दुख को पाय भाई, सत धैर्य न डिगाओ॥ 4॥
उपकार को सभी के, करलो विचार जी के।
भुलकर भी न किसी के, दिल को कभी दुखाओ॥ 5॥
विष का न स्वाद चाखो, मुख से न झूठ भाखो।
जीवों पे दया राखो, उपदेश सद् बढ़ाओ॥ 6॥
फिरते हो क्यों भुलाने, बिन गुरु कबीर जाने।
पढ़ पढ़ के पोथी पाने, बकवाद मत बढ़ाओ॥ 7॥

पारख प्रकाश

इच्छा-त्याग मुक्ति है

गांव-देहातों में, शहरों में जगह-जगह प्रचार किया जाता है, सरकार द्वारा विज्ञापन लिखवाया जाता है कि “कम संतान सुखी इंसान”। व्यावहारिक दृष्टि से यह बात सही है। संतान जितनी कम होगी उतनी ही व्यावहारिक झंझटें कम आयेंगी। यदि संतान है तो लिखाना, पढ़ाना, शादी-विवाह करना एवं किसी नौकरी-धंधे में लगाना आदि तमाम झंझटें आयेंगी। इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से यह ठीक है, कि कम संतान सुखी इंसान। लेकिन हम देखते हैं कि जिसकी एक संतान है वह भी दुखी है और जिसकी एक भी संतान नहीं है वह भी दुखी है। संतान कम हो जायेगी तो आदमी का दुख घट जायेगा ऐसा कुछ नहीं है। यदि हम कहें कि कम इच्छा सुखी इंसान, न इच्छा शांत इंसान, तो यह बात शत प्रतिशत सही है।

इच्छाएं जितनी कम होंगी, इंसान उतना सुखी होगा। संतान के कम होने से सुखी नहीं होगा, व्यावहारिक सरलता आयेगी उसमें। यदि इच्छा कम है तो आदमी सुखी है और इच्छा बिलकुल नहीं है तो आदमी मुक्त है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

चाह गयी चिन्ता मिटी, मनुवा बेपरवाह।

जिनको कछु न चाहिए, सोई शाहशाह॥

चाहनाएं मिटीं तो चिन्ताएं मिटीं। जितनी ज्यादा चाहना एवं इच्छा होगी उतनी ही अधिक चिन्ता होगी और उतना ही आदमी तनावग्रस्त होगा। चिन्ता होती है चाहनाओं से। चाहनाएं पूरी नहीं होतीं तो चिन्ता शुरू हो जाती है। चाहनाएं पूरी होती हैं तो तृष्णा बढ़ती है। जिसके पास कोई चाहना नहीं है उसे कौन-सा दुख। जीवन निर्वाह के लिए चाहना है वह अलग है। आपकी इच्छा हुई ध्यान शिविर में जाने की, सत्संग में जाने की, संत-महात्माओं के पास जाने की तो आप वहां गये।

सेवा-परोपकार की इच्छा हुई तो सेवा-परोपकार किये। यह सबकी इच्छा तो है लेकिन इस इच्छा में दुख नहीं है, बल्कि ये इच्छाएं दुख मिटाने के साधन हैं। सद्गुरु श्री विशाल साहेब ने कहा है—सो इच्छा इच्छा नहीं, वह तो इच्छा काट। जो इच्छा कही जाती है, जिससे दुख होता है वह भौतिक भोग और पदार्थों की इच्छा है और कैसी-कैसी इच्छाएं मन में उठा करती हैं इसकी कोई सीमा नहीं है। किसी ने कहा है—

हजारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पे दम निकले।

बहुत निकले मेरे अरमान फिर भी कम निकले॥

एक-एक ख्वाहिश, एक-एक इच्छा ऐसी होती है कि उसे जान देकर पूरा करना चाहिए ऐसा लगता है। लेकिन कितनी ही इच्छाओं को पूरा कर लें, लगेगा कि अभी तो कुछ ही इच्छाएं पूरी हुई हैं। इच्छाओं के पीछे भागने वाला आदमी कभी शांत नहीं हो सकता, कभी सुखी नहीं हो सकता। मेहनत करते रहें। जैसी योग्यता है, शक्ति है, जैसा समय है उस ढंग से मेहनत से जी न चुरायें, मेहनत से न घबरायें। जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती चली जायेगी। आवश्यकताओं की पूर्ति में कमी नहीं होगी। यदि मेहनत ही नहीं करेंगे तो आवश्यकताओं की पूर्ति में संकट आ सकता है। लेकिन आदमी आवश्यकताओं के लिए हैरान नहीं है, हैरान है इच्छाओं को पूरा करने के लिए। दुनिया में आज तक किसी की इच्छा पूरी नहीं हुई है। ऐसी-ऐसी इच्छाएं होती हैं कि कोई सीमा नहीं होती।

कम इच्छा या न इच्छा तो आदमी सम्राट है, मुक्त है, जीते जी मुक्ति का अनुभव कर सकता है। विदेहमुक्ति का अनुभव नहीं किया जा सकता। अनुभव जीवन्मुक्ति का होता है और जिसके मन में कोई इच्छा नहीं वह जीते जी मुक्ति का अनुभव कर सकता है। उसे किस बात की कमी। सद्गुरु विशाल साहेब कहते हैं—

चाह नहीं जेहि पास में, होवे कौन अकाज।

जिसके मन में कोई चाहना नहीं है उसका कौन-सा अकाज है, उसका क्या काम बिगड़ जायेगा।

इसलिए इच्छाओं को कम करें। इच्छाएं कम होंगी तो संताप अपने आप कम हो जायेगा। कम करना नहीं पड़ेगा। इच्छाएं कम होंगी, तो परवशता नहीं लेनी पड़ेगी, दूसरे की गुलामी नहीं करनी पड़ेगी। किसी के सामने जी हुजूरी नहीं करनी पड़ेगी। इच्छाएं जितनी बढ़ायेंगे उतनी परवशता लेनी पड़ेगी, गुलामी लेनी पड़ेगी, दौड़ते-दौड़ते थक जायेंगे मन अधूरा का अधूरा रहेगा। जिसने इच्छाएं समेट लिया वह किसी की गुलामी क्यों करेगा, परवश क्यों होगा। एक कहानी याद करें—

एक राजा सुबह घूमने के लिए जा रहे थे। एक बाग में उन्होंने एक संत को ध्यान में बैठे देखा। राजा को लगा कि ये तो पूर्व परिचित संत हैं, लेकिन सोचा ध्यान में बैठे हैं तो पास में जाना ठीक नहीं है। अतः घूमने चले गये। घूम करके जब लौटे तो संत को सामान्य अवस्था में बैठे देखकर राजा उधर चले कि संत जी से कुछ बातचीत कर लें, मुलाकात कर लें। महात्मा ने भी देखा कि राजा मेरी तरफ आ रहे हैं। राजा को आते देखकर संत बैठे थे तो लेट गये, पांव पसार कर सो गये। राजा ने देखा कि अभी तो महात्मा जी बैठे थे मुझे आते देखकर अब पांव पसार कर लेट गये। व्यवहार में होता है कि जब कोई आता है तो यदि हम लेटे होते हैं तो उठकर बैठ जाते हैं किन्तु यदि बैठे हैं और लेट गये तो व्यावहारिक शिष्टाचार के विरुद्ध होता है। पहले महात्मा बैठे थे, बाद में राजा को आते देखकर पांव पसार कर लेट गये। राजा पास में पहुंचे तो हंसते हुए पूछा कि आपने पांव पसारना कब से सीख लिया? महात्मा ने कहा—जब से हाथ पसारना छोड़ दिया।

यदि आदमी हाथ पसारना छोड़ दे तो पांव पसारना सीख जायेगा। हाथ पसारना है इच्छाओं-कामनाओं के पीछे दौड़ना और कामनाओं के पीछे दौड़ने वाला व्यक्ति पांव पसार कर निश्चिन्त सो नहीं सकता। एक न एक चिन्ता बनी रहेगी, कमी का अनुभव सदैव होता ही रहेगा। यदि कमी का अनुभव है, मन में असंतोष है तो

चाहे जो कुछ भी मिल जाये, कितना भी मिल जाये सुख नहीं मिलेगा। असंतोष, कमी का अनुभव दरिद्रता है। एक दरिद्रता होती है कि सुबह से शाम तक मेहनत करने के बाद भी पेट न भरे। मेहनत करता है आदमी सुबह से शाम तक लेकिन चौबीस घण्टे में एक बार भी भर पेट खाने को न मिले तो यह दरिद्रता दुखदायी है। हमारी कामना होनी चाहिए कि ऐसी दरिद्रता दुनिया में किसी व्यक्ति को न हो। गोस्वामी जी ने भी कहा है—

नहीं दरिद्र सम दुख जग माही।

संत मिलन सम सुख कुछ नाही॥

संसार में दरिद्रता के समान दुख कहीं नहीं है। हमारे पास पक्का मकान नहीं है, रंगीन टी.वी. नहीं है, ए.सी. कार नहीं है, यह दरिद्रता नहीं है। दरिद्रता है मेहनत करने के बाद भी जीवन की आवश्यकताएं पूरी न होना और ऐसी दरिद्रता किसी को नहीं होनी चाहिए क्योंकि यह दुखद है। “नहीं दरिद्र सम दुख जग माही” लेकिन आगे गोस्वामी जी ने यह नहीं कहा—“धन मिलन सम सुख कछु नाही” या “पद मिलन सम सुख कछु नाही”, “सम्मान मिलन सम सुख कछु नाही” उन्होंने कहा “संत मिलन सम सुख कछु नाही”।

धन से सुख नहीं मिलेगा, पद से सुख नहीं मिलेगा, सम्मान से सुख नहीं मिलेगा। जब संत मिलते हैं और संतों के द्वारा सही ज्ञान मिलता है, सही दिशा मिलती है, जीवन जीने की सही सीख मिलती है तब सुख मिलता है। धन बहुत बढ़ गया, बड़े पद पर हैं किन्तु जीवन जीने का सही तरीका मालूम नहीं है, सही ज्ञान मालूम नहीं है तो पद और धन क्या करेगा! ये तो व्यवहार की चीजें हैं। व्यवहार में पद मिल गया, उसका सदुपयोग करें, जनता की सेवा करें। धन मिल गया अपना निर्वाह करें, समाज की सेवा करें। धन, पद, प्रतिष्ठा का खण्डन नहीं है। खण्डन है सुख का, जो लालसा होती है उसका और इच्छा किसकी होती है। इच्छा होती है कि और धन बढ़े, बड़ा पद मिले, खूब मान-सम्मान मिले, प्रतिष्ठा मिले। मन भर का धन किसको मिला, मन भर की प्रतिष्ठा, पद किसको मिला। चाहे जितना धन मिले, चाहे जितना बड़ा पद मिले

उससे असंतोष नहीं मिटेगा और जहां असंतोष है वहां दुख है।

आदमी को चिन्ता होती है कि जैसा चाहिए वैसा धनवान मैं नहीं बन पाया। जैसा चाहिए वैसा विद्वान, प्रतिष्ठित नहीं हो पाया। बड़े धनवानों, विद्वानों एवं प्रतिष्ठित लोगों की श्रेणी में मेरी गिनती नहीं हुई, यह चिन्ता होती है। लेकिन इस बात की चिन्ता कितने लोगों को होती है कि जितना सद्गुण मेरे जीवन में आना चाहिए उतना सद्गुण नहीं आया। धनवान नहीं हो पाया इसकी चिन्ता होती है, गुणवान नहीं हो पाया यह चिन्ता कितने लोगों को होती है। गुणवान नहीं हुए, सद्गुण जीवन में नहीं आये तो धन क्या करेगा। कितने धनी हैं जो बिलबिला रहे हैं, एकदम दुखी हैं, अशांति में जी रहे हैं। पहले तो यह चिन्ता थी कि धन कैसे मिले। मेहनत किया भाग्य ने साथ दिया तो धन बढ़ गया। अब यह चिन्ता है कि धन की सुरक्षा कैसे हो। पहले धन नहीं था तो चिन्ता थी, अब धन बढ़ गया तो चिन्ता है। लेकिन पहले धन नहीं था गरीबी थी, तो आदमी कम से कम रात में आराम की नींद सोता था और अब धन बढ़ गया तब चिन्ता बढ़ गई, तनाव बढ़ गया, भय बढ़ गया, आराम की नींद सो नहीं पाता। इसलिए लोग कहते हैं जब आदमी के पास सोना नहीं था तब उसके पास सोना था और जब आदमी के पास सोना बढ़ गया तो उसका सोना घट गया। जब सोना (ज्यादा धन) नहीं था तब रात में खूब आराम की नींद सोता था, अब सोना (धन) बढ़ गया तब सोना (नींद) घट गया, अब नींद नहीं आती।

धन की जरूरत है उसका खण्डन नहीं है, किन्तु धन के पीछे जीवन को बरबाद न करें। सद्गुणों को जीवन में आचरित करें। जितना हम धनवान बनने के लिए योजना बनाते हैं उसका बीसवां हिस्सा भी गुणवान बनने के लिए सोचें और मेहनत करें तो जीवन का काया पलट हो जाये। लेकिन कभी मन में नहीं होता कि हमें गुणवान बनना चाहिए। सोच लेते हैं कि दया, क्षमा, धीर, विवेक, विचार या अन्य और जो सद्गुण हैं

ये सब तो महात्माओं के लिए हैं। ठीक है महात्मा लोग सुखी रहें अन्य लोग दुख भोगते रहें। लेकिन दुख कहां से आता है आदमी के पास। सुखी तो हर कोई होना चाहता है और सुखी होने के लिए इच्छा का त्याग जरूरी है। जब तक इच्छाओं का त्याग नहीं होगा तब तक सही अर्थों में हम सुखी नहीं हो सकते और इच्छा कभी किसी की पूरी होती नहीं है, हुई नहीं है और होगी भी नहीं, यह दुनिया का नियम है। इसलिए इच्छाओं को पूरा करने में इस अनमोल जीवन को बरबाद न करें। मेहनत करते चलें खाने-पीने को, परिवार की सेवा को, समाज-सेवा को धन मिल जायेगा और बाकी धन और समय को आत्मकल्याण में लगाएं।

दुनिया में कैसी विचित्रता है जो धन पुरुषार्थ और प्रारब्ध पर निर्भर है, भाग्य पर निर्भर है उसके लिए आदमी बहुत परिश्रम करता है। केवल पुरुषार्थ से धन नहीं मिलता, उसके साथ भाग्य का भी सहयोग जरूरी होता है। जो धन-पद भाग्य पर निर्भर है उसके लिए तो हम रात-दिन भागते चले जा रहे हैं। किंतु जो कल्याण केवल पुरुषार्थ पर निर्भर है उसके लिए हमारे पास समय ही नहीं है। कल्याण किसी के भाग्य में लिखा नहीं है। कल्याण के लिए हमें स्वयं प्रयत्न करना पड़ेगा, चाहे आज करें या कल, चाहे दस जन्म के बाद हमें ही प्रयत्न करना पड़ेगा किंतु उसे हम दूसरों के लिए छोड़ देते हैं। जो काम दूसरों से करवा सकते हैं वह काम स्वयं करते हैं। जो काम स्वयं करना चाहिए उसके लिए दूसरों के भरोसे रहते हैं। पहले भी ऐसा होता रहा है, आज भी ऐसा होता है।

बड़े-बड़े सेठ या बड़े-बड़े अफसर-मंत्री जिनके पास खूब धन है कहते हैं हमारे पास समय नहीं है। इतना व्यापार फैल गया है, इतना लेन-देन है, इतना काम-काज बढ़ गया है कि शांति से बैठकर कुछ पूजा कर लें, पाठ कर लें, कुछ धरम-चिन्तन कर लें, इसके लिए समय नहीं है। वे किसी पुरोहित को, ब्राह्मण या महात्मा को नियुक्त कर लिये हैं कि महाराज जी यह मंदिर है, मेरी तरफ से आप सुबह-शाम पूजा कर दिया

करें। लोग सोचते हैं कि हम खूब पाप करते हैं, इधर-उधर का काम हमें करना पड़ता है तो चलो पुरोहित को थोड़ा पैसा दे देते हैं वे हमारे लिए पूजा करते रहेंगे तो भगवान हमें भक्त जानकर हमारे पापों को काट देगा।

इस प्रकार का किराये का धर्म काम नहीं आयेगा। पुरोहित को पैसा दे दें, पुरोहित आपके लिए भोजन कर लेगा आपका पेट भर जायेगा। अपना समय बरबाद न करिये खाने में। धन कमाइये और पुरोहित को पैसा दे दीजिए आपके पत्नी-बच्चे को प्यार कर लेगा क्योंकि आपके पास समय नहीं है। पत्नी-बच्चे को प्यार करने में समय को बरबाद क्यों करते हैं। धन और पद के पीछे चाहे कितना भागना पड़े भोजन आपको करना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि कल्याण चाहते हैं तो भजन-साधना आपको ही करना पड़ेगा, कोई पुरोहित नहीं कर पायेगा।

इस धोखा में न रहिये कि हमने मंदिर बनवा दिया, पुरोहित नियुक्त कर दिया, तो हमारा पाप कट जायेगा। यह भयंकर धोखा है। कुछ पाप नहीं कटेगा, पाप और बढ़ जायेगा। आपको विश्वास हो गया मैंने मंदिर बनवा दिया, अब भगवान तो मेरा बेड़ा पार कर ही देगा तो फिर पाप की ओर दौड़ेंगे। हो ही रहा है दुनिया में। इस धोखा में समय को बरबाद न करें। यह किराये का धर्म काम नहीं आयेगा। जैसे स्वयं को भोजन करना होता है वैसे स्वयं को ही साधना करनी होगी। स्वयं ही अपने पापों को काटने के लिए भजन करना होगा। पाप हमने किया है, हमें ही धोना होगा, दूसरा कोई हमारे पाप को धो नहीं सकता। काम, क्रोध, लोभ, मोह हमारे ही बनाये हैं तो इनके लिए त्याग-वैराग्य के पथ पर हमें ही चलना होगा! दूसरा हमारे लिए साधना नहीं कर पायेगा। इसलिए स्वयं जागें। जब तक हम स्वयं नहीं जागेंगे, जब तक हम स्वयं अपनी आंखें नहीं खोलेंगे हमारे लिए प्रकाश नहीं होगा। स्वयं आंखें खोलें तब प्रकाश काम आयेगा। कितनी बत्तियां जलती हों, सूर्य ही उदय हो गया हो, अपनी आंख हम बंद किये हैं तो क्या होगा। केवल भटकना होगा, ठोकर खानी होगी।

अपनी आंख खोलें तब सूर्य का प्रकाश काम आयेगा। ऐसे ही स्वयं जागें, स्वयं मेहनत करें तब पाप कटेगा, तब कल्याण का काम होगा। धोखे में जीवन को व्यतीत न करें। बहुत हो गया अपने को धोखा देते-देते। दूसरों को क्या हम स्वयं को धोखा दे रहे हैं। स्वयं को धोखा देते-देते जीवन समाप्त हो जाता है। माता ने रोक दिया, पिता ने रोक दिया, पत्नी ने रोक दिया, पति ने रोक दिया इसलिए मैं धर्म का काम नहीं कर पाया, ऐसा कहना गलत है। हम स्वयं अपने को रोकते हैं। हमारे अन्दर दृढ़ निश्चय रहेगा तो न पत्नी रोक पायेगी, न पति रोक पायेगा, न माता-पिता रोक पायेंगे, कोई रोक नहीं पायेगा। हमारे मन में ही कायरता है इसलिए हम बहाना बनाते हैं, दूसरों को दोष देते हैं।

दृढ़ निश्चय हो जायेगा तो कल्याण का काम किसी के रोकने से रुकेगा नहीं। मीरा के सामने जितनी कठिनाइयां आयीं क्या हम लोगों के पास उतनी कठिनाइयां आ रही हैं। राजरानी मीरा के पास अनेक कठिनाइयां आयीं, लेकिन अटूट रहीं, अडिग रहीं। कोई रोक नहीं पाया। और भी ऐसे लोग हैं। हममें निश्चयता की कमी होती है तो दूसरे लोगों के कहने से रुक जाते हैं। यदि हमारी निश्चयता होगी तो कितना ही मजबूत बन्धन क्यों न हो सब तोड़ देंगे।

कल्याण का काम शरीर से उतना नहीं होता जितना मन से होता है। हमारे शरीर को कोई जंजीर से जकड़कर बांध सकता है, परन्तु मन को जकड़ने के लिए आज तक दुनिया में कोई जंजीर नहीं बनी है। हम सब अपने मन से गलत चिन्तन न करें। हमारे मन के लिए जंजीर हमारा गलत चिन्तन, हमारे द्वारा बनायी गयी वासना है। और कोई जंजीर नहीं है। दूसरा हमारे शरीर को जंजीर से बांध सकता है, कोई ताला लगा करके सात कोठरी में बंद कर सकता है लेकिन वहां भी रहकर हम कल्याण का काम कर सकते हैं। मन से शरीर-संसार की क्षणभंगुरता, दुखरूपता, आपातरमणीयता का ख्याल करके उधर से

मन को हटा लें और आत्मा की अमरता में मन को लगा लें तो कल्याण का काम हो गया। बीमार से बीमार आदमी, यदि उसका मस्तिष्क काम कर रहा है, यदि वह पागल नहीं है तो ऐसा व्यक्ति जो असाध्य बीमारी से पड़ा हुआ है बिस्तर पर, वह बिस्तर पर लेटे-लेटे अपना कल्याण कर सकता है। क्योंकि कल्याण मन से होता है। बंधन भी मन से होता है। हमारे मन को बांधने की ताकत किसी दूसरे में नहीं है। पूरी दुनिया मिलकर हमारे मन को बांध नहीं सकती। हम ही कायर बने हुए हैं। हमारे मन में दुनिया के सुख की लालसा है तो कोई क्या करेगा। दुनिया के लोग कहें कि तुम्हें कल्याण करना है, बाहर से हम अपनी इन्द्रियों को भोगों से रोक लिए और मन से भोगों का चिन्तन करते रहें तो हमारा बंधन बन गया।

कोई बाहर इन्द्रियों से विषयों का त्याग कर दिया और अन्दर मन से विषयों का चिन्तन कर रहा है तो वह आदमी महा भोगी हो सकता है। वासना है सतत विषयों का चिन्तन करते रहना और यह होता है मन से। मन से बंधन, मन से मोक्ष और मन पर नियंत्रण करना या उसे छोड़ देना, हम स्वतंत्र हैं दोनों में। कल्याण का काम मन से होता है, इसलिए यह कहना कि पत्नी ने ऐसा कह दिया, पति ने कह दिया या माता-पिता ने कह दिया, दूसरे ने कह दिया इसलिए काम नहीं कर पाया धोखा है। हम समझते हैं ऐसा कहकर दूसरों को धोखा दे रहे हैं। दूसरों को धोखा नहीं दे रहे हैं किन्तु खुद को धोखा दे रहे हैं। हमने अपने को बहुत धोखा दिया है, अब धोखा न दें। इच्छाओं के पीछे न दौड़ें, भोगों के पीछे न दौड़ें। जैसी चिन्ता है इच्छाओं को पूरा करने की उससे अधिक चिन्ता कल्याण के लिए करें। यदि ऐसा होगा, कल्याण के लिए समर्पित हो जायें तो इस जीवन में परमानन्द, मुक्ति, परम मोक्ष का अनुभव किया जा सकता है। इसमें किसी प्रकार की कोई बाहरी विवशता नहीं है। इसलिए अब जागें, चेतें और इच्छाओं को पूरी तरह मिटा करके परमानन्द में जीवन जीयें।

—धर्मन्द्र दास

अच्छा होता है

लेखक—डॉ. रणजीत सिंह

1. मारने वाले की अपेक्षा बचाने वाला अच्छा होता है।
2. अप्रिय सत्य बोलने की अपेक्षा मौन रह जाना अच्छा होता है।
3. काम बिगाड़ने वाले की अपेक्षा काम बनाने वाला अच्छा होता है।
4. गलत सलाह देने वाले की अपेक्षा सही सलाह देने वाला अच्छा होता है।
5. गलत मार्ग दिखाने वाले की अपेक्षा सही मार्ग दिखाने वाला अच्छा होता है।
6. होटल एवं ढाबों के खाने की अपेक्षा घर का खाना अच्छा होता है।
7. दूसरों को सुधारने की अपेक्षा खुद को सुधारना अच्छा होता है।
8. नकल से परीक्षा पास करने की अपेक्षा अक्ल से परीक्षा पास करना बेहतर है।
9. अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति से प्राप्त असफलता अच्छी होती है।
10. बेईमानी से भरपेट भोजन करने की अपेक्षा ईमानदारी से अर्जित धन से आधे पेट भोजन करना अच्छा है।
11. अपमान के मोहन भोग की अपेक्षा मान का जंगली साग खाना बेहतर है।
12. गंदगी करने वाले की अपेक्षा गंदगी साफ करने वाला मनुष्य अच्छा होता है।
13. भाषण की अपेक्षा आचरण से दी गयी शिक्षा बेहतर होती है।
14. हजार झूठ बोलने की अपेक्षा एक सत्य बोलना बेहतर है।
15. सुख की उत्पत्ति दुःख से होती है इसलिए सुख में रहने की अपेक्षा दुःख में रहना बेहतर है।

राम तजूं पै गुरु न बिसारूं

(सहजोबाई : जीवन एवं संदेश)

लेखक—देवेन्द्र दास

राम तजूं पै गुरु न बिसारूं।
गुरु के सम हरि को न निहारूं॥
हरि ने जन्म दियो जग माहीं।
गुरु ने आवागमन छुटाहीं॥
हरि ने पांच चोर दियो साथा।
गुरु ने लई छुटाय अनाथा॥
हरि ने कुटुंब जाल में फोरी।
गुरु ने काटी ममता बेरी॥
हरि ने रोग भोग उरझायौ।
गुरु जोगी कर सबै छुटायौ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ।
गुरु ने आतम रूप लखायौ॥
हरि ने मोसूं आप छिपायौ।
गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ॥
फिर हरि बंध मुक्ति गति लाये।
गुरु ने सबही भर्म मिटाये॥
चरणदास पर तन मन वारूं।
गुरु न तजूं हरि को तज डारूं॥

—सहजोबाई

1. भूमिका—सहजो अपने नाम के अनुरूप ही बड़ी सहज हैं—सरल, स्वाभाविक, अनगढ़। उनमें कुछ भी आरोपित नहीं है। वह एक ग्रामीण महिला हैं। वह हृदय से बोलती हैं, जो सीधे श्रोता के हृदय में प्रवेश कर जाता है। बिना किसी दार्शनिकता में पड़े, सहजो दो टूक ढंग से अपनी बात कह जाती हैं। सहजो आत्मोपलब्ध थीं। वह संत थीं, ब्रह्मचारिणी थीं; घर-गृहस्थी न जाना था, संसार उन्हें न भाया था।

सहजोबाई कबीर साहेब जैसे हैं। कबीर जुलाहे थे। सहजो एक ग्रामीण महिला; किंतु इन दोनों से बड़ी आशा बंधती है मन को। जब ये इतने साधारण आत्मोपलब्ध हो सकते हैं, तो यह निश्चित है कि कोई

भी प्रयत्न करके सफल हो सकता है। अध्यात्म मार्ग में सिर्फ सही दिशा में पुरुषार्थ का मूल्य है, बाकी सब गौण है।

2. जन्म एवं जन्मस्थान—सहजो लगभग दो सौ वर्ष पूर्व हुईं। उनका संभावित जीवन सन् 1725-1805 ई. तक रहा। 80 वर्ष की उम्र में वृंदावन में उनका शरीर छूटा। उन्होंने अपने ग्रंथ में आत्म-परिचय के रूप में लिखा है—

हरिप्रसाद की सुता, नाम है सहजो बाई।

दूसर कुल में जन्म, सदा गुरु चरन सहाई॥

चरनदास गुरुदेव, भेव मोहिं अगम बतायौ।

जोग जुगत सूं दुलभ, सुलभ करि दृष्टि दिखायौ॥

मेरा नाम सहजोबाई है। हरिप्रसाद की पुत्री हूं। दूसर कुल में जन्मी हूं। गुरुदेव चरनदास जी ने इस अगम संसार से पार जाने की दृष्टि सुलभ की है।

सहजो का जन्म राजस्थान के मेवात क्षेत्र में हुआ। अलवर एवं इसके निकटवर्ती जिलों को मेवात कहा जाता है। राजस्थान के गांवों में मुसलमानों को 'मेव' कहा जाता है। इस क्षेत्र में मुसलमानों की संख्या ज्यादा होने से यह क्षेत्र मेवात कहलाया। सहजोबाई, उनकी गुरुबहन दयाबाई एवं इन दोनों के गुरु चरणदासजी, तीनों ही, मेवात के एक गांव डेहरा के हिंदू परिवार से थे। ये जाति के दूसर बनिया थे।

3. सहजो के गुरु चरणदासजी—ग्यारह वर्ष की उम्र में ही सहजो ने अपने गुरु का आधार ले लिया था। उनके गुरु चरणदास जी थे।

निश्चय यह मन डूबता, मोह लोभ की धार।

चरनदास सतगुरु मिले, सहजो लई उबार॥

सहजो गुरु दीपक दियो, देख्यौ आतम रूप।

तिमिर गयौ चांदन भयौ, पायो परगट गूप॥

चरणदास जी दिल्ली की तरफ रहते थे। वे संत मत के थे। संतमत कबीर-साहेब से प्रभावित एक मत है जो कर्मकांड, दिखावा से रहित है। इसका जोर शरीर-संसार की नश्वरता, वैराग्य, गुरुभक्ति एवं अंतर्मुखता पर है। चरणदास ने सहजोबाई को उबारा था। सहजो ने रीझकर अपने गुरु का गुणगान करने के लिए एक ग्रंथ रचा—सहज प्रकाश। चरणदास जी के 52 शिष्य बताये जाते हैं। इनके नाम पर चरणदासी संप्रदाय चल पड़ा है जिसके लाखों अनुयायी बताये जाते हैं।

4. सहज प्रकाश की मुख्य बातें—‘सहज प्रकाश पोथी कही, चरणदास परताप।’ दिल्ली के निकट परीक्षितपुर गांव में सहजो ने गुरु गुणों को प्रगट करने हेतु यह ग्रंथ लिखा। इसमें अनेक विषय हैं—गुरु, सद्गुरु, साधु-महिमा, वैराग्य वचन, विनम्रता, लघुता, निर्गुण-सगुण संशय निवारण, कर्मफल, तीन अवस्था-जन्म, वृद्ध, मृत्यु का वर्णन। आत्म दशा एवं आत्म रूप का वर्णन। बेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद से सहजो बाई का ग्रंथ ‘सहज-प्रकाश’ प्रकाशित है। यह लघु ग्रंथ है, लगभग 62 पृष्ठों का।

1. सहजोबाई के विचार—(1) चार प्रकार के गुरु—

गुरु हैं चार प्रकार के, अपने अपने अंग।

गुरु पारस दीपक गुरु, मलयागिरि गुरु भृंग ॥

सहजो कहती हैं, चार प्रकार के गुरु होते हैं—

1. गुरु-पारस—गुरु पारस पत्थर जैसे होते हैं। जिस प्रकार कल्पित पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, वैसे ही गुरु के निर्मल बोध-ज्ञान-रहनी के सान्निध्य से शिष्य की मनोदशा परिवर्तित हो जाती है।

2. दीपक-गुरु—जिस प्रकार जलता दीपक दूसरे दीपक को जलाता है, वैसे गुरु अपने विवेकज्ञान से शिष्य के प्रसुप्त विवेक को प्रकाशित करता है।

3. मलयागिरि-गुरु—मलयागिरि = चंदन का वन। जिस प्रकार चंदन के वन में उगे पलाश के पौधों में चंदन की सुगंध समा जाती है, वैसे ही गुरु अपने

विवेक-वैराग्य-बोध से शिष्य के अन्तःकरण को सुवासित कर देते हैं।

4. गुरु-भृंग—भृंगी कीट साधारण कीट को अपनी आवाज सुनाकर उसे अपने जैसा बना लेता है। वैसे ही, गुरु भी अपने परमार्थ वचनों से शिष्य को अपने अनुरूप बना लेते हैं।

2. चार बुद्धि के मनुष्य—सहजो कहती हैं चार प्रकार की बुद्धि के मनुष्य होते हैं—

1. प्रथम बुद्धि जल-लीक खिंचाई—जल में खींची गयी रेखा सदृश क्षणिक एवं चंचल बुद्धि के लोग। जल में लकीर खींचो, वह आगे बनती जाती है, पीछे मिटती जाती है। ऐसे ही, क्षणिक बुद्धि के लोग भी होते हैं।

2. दूजी बुद्धि लीक रस्ते की—धूल भरे रास्ते में लकीर खींचो, थोड़ी देर में पीछे की लकीर मिट जाती है। पानी पर खींची लकीर की अपेक्षा यह स्थाई है किंतु ज्यादा नहीं। कुछ मनुष्यों की बुद्धि भी ऐसी ही होती है।

3. तीजी बुद्धि पाहन की रेखा—पत्थर पर खींची गयी रेखा जैसी बुद्धि। पत्थर पर लकीर खींचना आसान नहीं है। यह आसानी से मिटती भी नहीं अगर बन जाये तो। ऐसी बुद्धि के लोगों को जितना समझा-बता दो, उतने पर ही रुक जाते हैं। उसका विकास नहीं कर पाते।

4. चौथी तेल बूंद जल माहीं—तेल की बूंद जैसे पानी पर पड़े तो वह फैलती चली जाती है। ऐसे ही कुछ बुद्धिमान लोग होते हैं जिनमें कल्पनाशीलता एवं विचार-शक्ति होती है।

सहजो कहती हैं—पहले वाली तीन प्रकार की बुद्धि संसार में प्रायः देखने को मिलती हैं, चौथी बुद्धि बिरले को ही मिलती है किंतु सारी बुद्धि थोथी एवं व्यर्थ है अगर कल्याण न किया और इसके लिए गुरु-कृपा चाहिए।

तीन बुद्धि जग में दरसावै, चौथी बुद्धि कोइ बिरला पावै।

सहजो बुद्धि सब थोथी कहिये, गुरु की कृपा सबन में चाहिये ॥

3. गुरु सबसे श्रेष्ठ हैं—सहजो अपनी गुरु भक्ति के लिए जानी जाती हैं। उन्होंने जिस अंदाज में गुरु को

ऊपर उठाया है वह अनुपम है। सहजो ने गुरु में परमात्मा देख लिया है। उनके लिए परमात्मा कोई और नहीं है। सहजो ने तर्क दिया है कि जिस कारण से लोग प्रभु को पूजते हैं, उससे बेहतर है गुरु को पूजना। उन्होंने गुरु को हरि से श्रेष्ठ सिद्ध किया है और इसके सात कारण गिनाती हैं सहजो —

1. सहजो कहती हैं, मैं राम को छोड़ सकती हूँ पर अपने गुरुदेव को नहीं भूल सकती। गुरु के समकक्ष हरि को न रख सकूंगी। हरि ने इस संसार में जन्म दिया है जबकि गुरु ने इस जन्म-मरण एवं आवागमन के दुख से मुझे मुक्त किया है।

2. हरि ने पांच इन्द्रिय रूपी चोर इस शरीर में लगा दिये जबकि गुरु ने मुझे अनाथ-असहाय जानकर इन इन्द्रियों की वासना से छुड़ा लिया।

3. हरि ने तो मुझे कुटुंब जाल में घेर रखा था किंतु गुरु ने मेरी ममता-बेड़ी काट कर मुक्ति दी।

4. हरि ने तो रोग-भोग में उलझाए रखा किंतु गुरु ने योगी बनाकर इनसे मुक्ति दिलायी।

5. हरि के चक्कर में कर्मकांड का भ्रम बना रखा था मन में। उसे पाने के लिए कर्मकांड करो, ऐसा विश्वास था; किंतु गुरु ने सभी लक्ष्य काट कर आत्मरूप लखा दिया।

6. हरि ने संसार में मुझे भटकाया और अपने को मुझसे छिपाए रखा; गुरु ने ज्ञान का दीपक देकर मेरा अंधकार मिटा दिया।

7. हरि ने बंधन दिये किंतु मेरे मन में यह विश्वास था कि तुम्हीं बंधनों से मुक्ति-गति भी दोगे किंतु गुरु ने मेरा यह भ्रम मिटा दिया कि बाहर का कोई परमात्मा बंधन-मुक्ति देता है।

गुरु के इतने अमिट उपकार हैं कि मैं उन पर न्योछावर हूँ—

चरणदास पर तन मन वारुं, गुरु न तजुं हरि को तज डारुं।

सहजो परम भक्तिन हैं। वे गुरु को समर्पित हैं। बड़ी सहजता से गुरु को चुन लेती हैं। परमात्मा वस्तुतः गुरु से भिन्न नहीं है। गुरु ही परमात्मा हो गया है सहजो के लिए।

गुरु मार्ग

4. 'गुरु के प्रेम पंथ सिर दीजै'—सहजो कहती हैं—गुरु के प्रेम पंथ में अपने को समर्पित कर दो, अब उसमें आगा-पीछा न सोचो। इस मार्ग की कठिनाइयों से डरो मत, जो होगा, सो होगा; तुम दूसरे मार्ग को मत निहारो। वही शूरवीर है, योद्धा है जो गुरुमार्ग में चले। बोदा (कमजोर) गुरुमार्ग में क्या चलेगा? गुरुमार्ग में ठग नहीं, कपट और भय नहीं। यह तो मुक्ति का प्रकाशित, प्रशस्त मार्ग है। संसार में गुरुमार्ग के समान कुछ भी नहीं। इसकी बराबरी कैसे करोगे? इसमें सभी दुखों का अंत हो जाता है। महासुख होता है। चरणदास जी का पंथ कठिन है किंतु गुरुमुख के लिए सहज है। जो सत्य रहनी का है, वह इस पथ पर चलता है और, सहजो कहती हैं, वह अनादि का भेद (मर्म), मुक्ति का मार्ग पाता है।

5. 'गुरु निंदक जग में दुखी'—सहजो कहती हैं, गुरु की आज्ञा मानते नहीं, उलटे गुरु को दोष लगाते हैं। ऐसे गुरुनिंदक जग में दुखी रहते हैं, उन्हें मरने पर भी चैन नहीं होता। सहजो सावधान करती हैं कि ऐसे लोगों से व्यवहार न लो, उनकी चर्चा न करो, न ही उनसे गोष्ठी करो। उनकी संगत करनेवाला गुरु विमुख, निगुरा एवं निंदनीय है। सहजो कहती हैं, गुरुदोषी की अवगति की चर्चा मानो मैं अपने को समझाने के लिए ही कर रही हूँ। ऐसों को चौरासी का क्रम नहीं छूटता, कालजाल में फंसते हैं और यम (मन की वासनाएं) उन्हें लूटता है। ऐसे गुरुनिंदकों को बार-बार गर्भवास का दुख भोगना पड़ता है। जग में सूखे पत्ते जैसे, पानी का बगूला जैसे प्रेत बने इधर-उधर भटकते रहते हैं। उनका तन-मन हमेशा मैला और उदास रहता है; उनके गले में अहंकार, दंभ, कपट की फांसी लगी रहती है। सहजो कहती हैं, ऐसे लोगों से दूर ही भागो। इनका तो नाम लेते ही मुझे शर्म आती है। ये मनमुखी गुरुमार्ग के उलटे चलते हैं एवं साधना का मर्म नहीं समझते। दुष्टतापूर्ण आचरण करते हैं, वाद-विवाद करते हैं, अहंकार में फूले फिरते हैं और 'बहुत बजावै गाल', अपनी डींग हांकते हैं।

6. साधु महिमा—

साधु मिले गुरु पाइया, मिटि गये सब संदेह।
सहजो को सम ही भयो, कहां गिरवर कहां गेह ॥
साधु मिले दुख सब गये, मंगल भये सरीर।
बचन सुनत ही मिटि गई, जनम मरन की पीर ॥
साधु संग में चांदना, सकल अंधेरा और।
सहजो दुर्लभ पाइये, सतसंगत में ठौर ॥
सतसंगत की नाव में, मन दीजै नर नार।
टेक बल्ली दृढ़ भक्ति की, सहजो उतरै पार ॥
जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुल खोय।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सो गंग होय ॥
जब चेतै तब ही भला, मोह नींद से जाग।
साधु की संगत मिलै, सहजो ऊंचे भाग ॥

अर्थ—सहजो कहती हैं, साधु मिल गये मानो गुरु ही मिल गये। सब संदेह मिट गये। अब तो मन समता में स्थित हो गया फिर घर-जंगल में भेद क्या? साधु मिले, सारे दुख विदा हो गये, तन-मन मंगलमय हो गये। साधु-वचनों को सुनकर जन्म-मरण की पीड़ा मिट गयी। सहजो कहती हैं, साधु-संग में मानो चांदनी का शीतल प्रकाश है, अन्यथा तो सब जगह अंधेरा है। सतसंगत में ठौर मिले, यह दुर्लभ है। सतसंग की नाव में नर-नारी ध्यान लगाओ। भक्ति की बल्ली का सहारा लेकर भवधारा से पार हो जाओ। सतसंग में जो आता है उसकी जाति-वर्ण सब मिट जाते हैं, वैसे ही जैसे मैला-कुचैला जल गंगा में मिलकर गंगा रूप हो जाता है। सहजो कहती हैं, जब जागो तभी सबेरा। मोह-नींद से जागो। साधु संगत मिल रही है, यह तुम्हारे ऊंचे भाग्य हैं।

7. साधु लक्षण क्या हैं?

साधु सोई जो काया साधै, तजि आलस और बाद विवादै ॥
गहै धारना सब गतिभारी, तजै विकलता अस्तुति गारी ॥
छिमावन्त धीरज को धारै, पांचों बशि कर मन को मारै ॥
त्यागै झूठ सांच मुख बोलै, चित स्थिर इत उत न डोलै ॥
तन जग में मन हरि के पास, लोक भोग सूं सदा उदासा ॥

निर्गुण ध्यानी ब्रह्म ज्ञानी, मुख सो बोलै अमृत बानी ॥
समझ एकता भाव न दूजे, जिनके चरण सहजिया पूजे ॥

सहजो बाई कहती हैं, साधु वही जो काया (शरीर) को साधे। आलस्य तजकर रहे और वाद-विवाद से मुक्त हो। वह सब में विवेकपूर्ण समझ धारण करे और चंचलता त्यागकर स्तुति-निंदा से मुक्त हो। वह धैर्यवान हो, क्षमालु हो, मन को मारकर तथा पांचों ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके रहता हो। झूठ को सर्वथा त्याग दिया हो, तथा मुख से सच बोलता हो, उसका चित्त स्थिर एवं अडोल हो। तन से तो व्यवहार का कार्य करे पर मन हरि सुमिरन में लगा हो; वह लोक-भोग से सर्वथा उदास हो। वह निर्गुण का ध्यान लगाता है तथा ब्रह्मज्ञानी होता है। उसके मुंह से अमृतवाणी निकलती है। उसकी सब में एकता होती है, किसी को दूसरा नहीं समझता। सहजो कहती हैं, ऐसे संतों के मैं चरण पूजती हूँ।

8. 'साधु सुखी सहजो कहै'

ना सुख विद्या के पढ़े, ना सुख वाद-विवाद।
साधु सुखी सहजो कहै, लागै सुन्न समाधि ॥ 36 ॥
मुए दुखी जीवत दुखी, दुखी भूख आहार।
साधु सुखी सहजो कहै, पायौ नित्य विहार ॥ 37 ॥
चाह दुखी आसा दुखी, महादुखी अज्ञान।
साधु सुखी सहजो कहै, पायौ केवल ज्ञान ॥ 38 ॥
धनवंते सब ही दुखी, निर्धन हैं दुख रूप।
साधु सुखी सहजो कहै, पायौ भेद अनूप ॥ 39 ॥
रंक दुखी राजा दुखी, दुखी सकल संसार।
साधु सुखी सहजो कहै, पाया भेद अपार ॥ 40 ॥
ना सुख दारा सुत महल, ना सुख भूप भये।
साधु सुखी सहजो कहै, तस्ना रोग गये ॥ 41 ॥

सहजो कहती हैं, बहुत विद्या पढ़ लेने में सुख नहीं है, न ही वाद-विवाद में कुशल हो जाने में सुख है। साधु सुखी हैं। वे मन को शून्य कर समाधि में लगाते हैं। मृत-जीवित सभी दुखी हैं। भूखा और जिसके पास आहार है, दोनों ही दुखी हैं। मात्र साधु सुखी है क्योंकि वह नित्य आत्म-विहार करता है। चाहना-आशा रखने वाला दुखी है, अज्ञानी तो महादुखी है। मात्र साधु सुखी

हैं, जो आत्मज्ञानी हैं। धनवंत दुखी हैं, निर्धन तो दुख रूप ही है। साधु सुखी है जिसने आत्मतत्त्व का भेद पा लिया है। भिखारी दुखी है, राजा भी दुखी है; सारा संसार दुखी है। साधु सुखी है जिसने इस मन से पार पाने का भेद पा लिया है। सहजो कहती हैं, न स्त्री में सुख है, न पुत्र में। न राजा होने में सुख है। वही साधु सुखी हैं जिनका तृष्णा-रोग समाप्त हो चुका है।

9. 'जगत तरैया भोरकी'

अज्ञानी जानत नहीं, लिप्त भया करि भोग।
 ज्ञानी तो दृष्टा भये, सहजो खुशी न शोक ॥
 मन माहीं बैराग है, ब्रह्म माहिं गलतान।
 सहजो जगत अनित्य है, आत्म को नित जान ॥
 मृग तृष्णा जल सांच है, जब लग निकट नजाय।
 सहजो तब लग जग बन्यौ, सतगुरु दृष्टि न पाय ॥
 जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
 जैसे मोती ओस की, पानी अंजुली माहिं ॥
 धूवां को सो गढ़ बन्यो, मन में राज संजोय।
 झाँई माई सहजिया, कबहूँ सांच न होय ॥
 ऐसे ही जग झूठ है, आत्म को नित जान।
 सहजो काल न खा सकै, ऐसो रूप पिछान ॥
 रूप नाम गुन से रहित, पांच तत्त्व से दूर।
 चरणदास गुरु ने कही, सहजो छिपा हजूर ॥
 आपा खोजे पाइये, और जतन नहिं कोय।
 नीर छीर निताय के, सहजो सुरति समोय ॥

सहजो कहती हैं, अज्ञानी भोगों में लिप्त होता है, वह वास्तविकता को जानता नहीं जबकि ज्ञानी द्रष्टा रूप में रहकर जीता है। अतः वह सुख-दुख के द्वंद्व से पार रहता है। ज्ञानी का मन वैराग्यपूर्ण है, उसका लक्ष्य ब्रह्म है। सहजो कहती हैं यह जगत अनित्य है, आत्मा को जानो वही नित्य है। जैसे दूर रहने पर मृगों को रेत में जल जान पड़ता है वैसे ही जब तक सद्गुरु की ज्ञान दृष्टि नहीं मिलती, तब तक यह जगत सच जान पड़ता है। यह संसार सुबह का आखिरी डूबता हुआ तारा है, बस डूबने वाला है, ठहरेगा नहीं; जैसे घास के पत्तों पर ओस की बूंद सुबह की धूप पाकर क्षण भर मोती जैसी

चमकती है; जैसे अंजुली का पानी निरंतर बहा जा रहा हो, ऐसे ही यह संसार क्षणभंगुर है। जैसे धूवां की लाट बनती-मिटती है वैसे ही मन के सपने हैं। यह मन के झाँई-माई (बच्चों के खिलवाड़) में न पड़ो, ये कभी सच नहीं होते। संसार ऐसे ही झूठ समझो, आत्मतत्त्व को नित्य जानो। अपना आत्म रूप ऐसा है जिसको काल नहीं खा सकता, उसे पहचानो। यह नाम, रूप, गुण से रहित, पांच तत्त्वों से अलग है, सहजो को चरणदास ने बताया यह हजूर-श्रेष्ठ तत्त्व, तुम्हारे भीतर ही छिपा है। अपने को खोजो तो ही पाओगे और कोई उपाय नहीं। नीर-क्षीर का निर्णय करके सहजो कहती हैं, उसे सुरति में समा लो।

गुरुभक्ति द्वार है अध्यात्म में, आत्मा में प्रवेश का।
 सहजो ने आत्मतत्त्व पर कहा है—
 वैराग्य को अंग—

'झूठा नाता जगत का'
 झूठा नाता जगत का, झूठा है घर बास।
 यह तन झूठा देखकर, सहजो भई उदास ॥
 जब लग चावल धान में, तब लग उपजै आय।
 जब छिलके को तजि निकस, मुक्ति रूप है जाय ॥
 कोई किसी के संग ना, रोग मरन दुख बंध।
 इतने पर अपनौ कहै, सहजो ये नर अंध ॥
 यह मंदिर यह नारि है, यह धन यह संतान।
 तेरो न सहजो कहै, काहे करत गुमान ॥
 निस्चै मरना सहजिया, जीवन की नहिं आस।
 कै टूटी सी झोपड़ी, कै मंदिर में बास ॥
 कै गरीब सिर टोकरी, कै सिर छतर होय।
 जन्म मरन में एक से, सहजो भांति न दोय ॥
 मरना है रहना नहीं, जाना वाही ठौर।
 सहजो कै कंगाल हो, कि हो द्रव्य करोड़ ॥
 बैठि-बैठि बहुतक गये, जग तरवर की छाँहि।
 सहजो बटाऊ बाट के, मिलिमिलि बिछुड़त जाहिं ॥
 आगे मुये सो जा चुके, तू भी रहै न कोय।
 सहजो पर को क्या झुरै, आपन ही को रोय ॥

सहजो बाई कहती हैं, जिन लोगों के बीच रहते हैं, उनसे संबंध झूठा है, जिस घर में बसते हैं एक दिन उसे

भी छोड़ना है अतः वह भी झूठा है। सहजो कहती हैं, यह शरीर भी एक दिन छूट जायेगा जिसमें अभी बास है। यह जानकर संसार एवं शरीर से उदास होकर रहो॥ जिस प्रकार धान के छिलके में रहने पर चावल बार-बार उपजता है। जब छिलका अलग और चावल अलग, तब चावल का पुनः उपजना बंद। वैसे ही जग की वासना से अलग हो जाने पर मुक्ति है॥ सहजो कहती हैं, रोगी होने पर, मरने पर, दुख या बंधन में पड़ने पर कोई किसी का नहीं होता, फिर भी लोग अंधे बने एक दूसरे को अपना-अपना कहते हैं॥ मकान जिसमें रहते हो, वह स्त्री जो तुम्हारी पत्नी है, यह धन, संतान आदि कुछ भी तो अंततः तुम्हारे साथ रहता नहीं फिर क्यों इनका गुमान करना? सहजो कहती हैं एक दिन मरना ही है, यह निश्चित है, इससे बचने का कोई उपाय नहीं फिर झोपड़ी में रहकर मरो या महल में, क्या फर्क पड़ता है?॥ गरीब के सिर की टोकरी और धनी के सिर पर लगा राजछत्र, दोनों ही यहीं रह जाते हैं, मरने पर कुछ भी साथ जाता नहीं॥ यहां से तो जाना ही है और सब छोड़कर जाना है, फिर कंगाल रहो या कि करोड़पति, इसका क्या मूल्य?॥ इस जगत-वृक्ष के नीचे छांह में बैठकर विश्रामकर बहुत पथिक आगे चले गये। मिलना, मिलकर बिछुड़ना इसका नियम है फिर क्या मोह-शोक करना? पहले के लोग मर चुके, तू भी न रहेगा। दूसरों की चिंता छोड़कर, अपने लिए सोचो।

कर्मानुसार जन्म—

सहजो रहै मन वासना, तैसो पावै ठौर।

जहां आस तहां बास है, निस्चै करी कड़ोर॥

देह छूटे मन में रहै, सहजो जैसी आस।

देह जन्म जैसो मिलै, जैसे ही घर बास॥

जहां वासना जित ही जाई, यह मत वेद पुरानन गाई॥

चरनदास गुरु मोहिं बताई, तजो वासना सहजोबाई॥

सहजो कहती हैं, जैसी मन में गहरी वासना होती है वैसा ही मृत्यु पश्चात ठौर मिलता है। यह एकदम निश्चित है कि जहां आशा होती है, जीव का वहां वास होता है॥ देह छूटने के समय मन में जैसी वासना रहती है वैसा ही नया जन्म लेने पर स्थान व शरीर मिलता

है॥ वेद, पुराण भी यही बात दोहराते हैं कि जीव की वासना उसे भटकाती है। सहजो कहती हैं, मेरे गुरु चरणदास ने मुझे वासना से मुक्त होने का उपदेश दिया, आदेश दिया।

नन्हा होना उत्तम है—

सहजो कहती हैं—छोटापन ही धन है इसमें महासुख है। बड़ाई को धिक्कार है, यह हमें खराब करती है। नन्हा हो जाओ, गुरु के वचनों का आदर करो॥ साधू को दीनता शोभती है, जो दुष्ट है, वह बड़ाई चाहता है॥ जंगल का शेर बड़ा अभिमानी होता है। अपने अभिमानवश वह उजाड़ में फिरता है। जबकि बकरी का बच्चा सहज होकर रहता है और सारे संसार का प्यार पाता है॥ सिर, कान, मुख, नासिका ये सब ऊंचे नाम वाले हैं किंतु नीचे होकर भी पांव ही पूजे जाते हैं॥ भवन में नन्हीं चींटी कहीं भी घूमती रहती है उसे मनाही नहीं, लेकिन हाथी बहुत बड़ा होता है, उसके सिर पर धूल पड़ती है॥ दूज का चांद सबको दर्शनीय है। धीरे-धीरे वह बढ़ता है और अधिकाधिक प्रकाशित होता जाता है॥ सहजो कहती हैं, मैंने अपनी आंखों देखा है, बड़ा होने में कैसा आदर? जिसके चलते तुम बड़े हो, वह सभी कला-कौशल एक दिन घट जायेंगे, कुछ भी निशान न रहेगा उनका॥ नन्हा बालक राजा के महल में जाता है, उससे कोई नारी परदा नहीं करती, सभी आगे बढ़कर उसे गोद में उठा लेती हैं॥ सहजो कहती हैं, साहेब के दरबार में बड़ा होकर न जा सकोगे। द्वार ही से तगड़ी मार पड़ेगी और भगा दिये जाओगे॥ गरीबी भली, झुकना भला, जो गरीब है और सिर झुकाए है, उसे कौन मारेगा? सहजो कहती हैं, कपास की रूई को तलवार नहीं काट पायेगी॥ सहजो कहती हैं, मेरे गुरु चरणदासजी ने मुझे यह सीख दी है। हो सके तो छोटा हो जाओ, छोटा होने में जंजाल से मुक्ति है॥ राजा को चारों तरफ भय बना रहता है, जबकि रंक निर्भय होता है॥ हाथी के पैर में बेड़ियां पड़ी होती हैं जबकि चींटी निष्फक्र होकर घूमती है।

...ताहि बोउ तू फूल!

लेखक—पं. श्रीकृष्णदत्त जी भट्ट

एक संत का पद है—

‘जो तोकूँ कांटा बुवै ताहि बोउ तू फूल!’

बात बहुत छोटी-सी है, पर है बड़ी कठिन। कहा है किसी ने—

‘मधु पी लेते सभी मधुप बन,
पर विषपान कठिन कितना है।’

सचमुच, बहुत कठिन है नीलकण्ठ बनना। पर कठिन लाख हो, हम कोशिश करके नीलकण्ठ बन सकते हैं, जरूर बन सकते हैं।

लीजिये कुछ उदाहरण।

मारने से पहले मुझसे काम तो ले लो

‘आखिर तुम चाहते क्या हो?’

‘मुझे मारना है? यह काम तो तुम कभी भी आकर कर सकते हो। पर मुझे मारने से पहले मेरे लायक कोई काम हो तो वह मुझसे करा लो; फिर चाहे जब मार डालना। मैं तो रोज सबेरे इसी बगीचे में मिलता हूँ।’—सिरेमल बापना ने कहा।

सहजो बाई की वाणी के आधार पर यह सार वचन लिखा गया है। सहजो-वाणी का प्रचार-प्रसार दिल्ली, राजस्थान, बिहार, बुंदेलखंड (उ.प्र.) में हुआ है।

चरनदास गुरु की दया, गयो सकल संदेह।
छूटे वाद विवाद सब, भई सहज गति लेह ॥
गुरु बिन मारग न चलै, गुरु बिन लहै न ज्ञान।
गुरु बिन सहजो धुंध है, गुरु बिन पूरी हान ॥
सतगुरु बिन भटकत फिरै, परसत पाथर नीर।
सहजो कैसे मितत है, जम जालिम की पीर ॥

हरिहर जप लेनी औसर बीतो जाय।

जो दिन गये सो फिर नहीं आवैं, कर विचार मन लाया।
या जग बाजी सांच न जानो, तामे मत भरमाय।
कोई किसी का है नहीं बौरै, नाहक लियौ लगाय ॥
अंत समय कोई काम न आवैं, जब जम देहि बोलाय।
चरनदास कहैं सहजोबाई, सत संगत शरणाय ॥

इतना सुनना था कि नाथूसिंह के हाथ का रिवाल्वर छूटकर धरती पर जा गिरा।

वह फुक्का फाड़-फाड़कर रोने लगा। उसने पैर पकड़ लिये बापना साहब के।

× × ×

सिरेमल बापना ने अपने जीवन के बयासी वर्षों में से इकतालीस वर्ष होल्कर, पटियाला, बीकानेर, रतलाम एवं अलवर-जैसी देशी रियासतों में प्रधानमंत्री या गृह मंत्री जैसे ऊंचे पदों पर रहकर बिताये थे।

इन दिनों वे इन्दौर में थे।

वहीं के खडैल गांव का पटेल था—नाथूसिंह।

भाइयों से उसका झगड़ा हुआ। पुलिस ने उसे कई फौजदारी मुकदमों में फंसा दिया। एक से छूट न पाता, दूसरे में पकड़ जाता।

अन्त में निराश होकर नाथूसिंह ने सोचा कि पुलिस के चंगुल से छुटकारा मिलना मुश्किल है तो चलूँ, सारी खुराफात की जड़ रियासत के दीवान का ही खातमा कर दूँ—‘न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी!’

दीवान बापना साहब रोज सबेरे एक घण्टे अपने बगीचे में जनता की फरियादें सुनते। उनसे जो बनता, करते।

एक दिन नाथूसिंह सब फरियादियों के पीछे जा खड़ा हुआ। सबके चले जाने पर जब उसकी बारी आयी, तब वह रिवाल्वर तानकर बापना साहब की ओर बढ़ा। बापना साहब न डरे, न घबराये, न झिझके। उन्होंने बड़े प्रेम से पूछा—‘आखिर तुम चाहते क्या हो? तुम मुझे मारना चाहते हो तो चाहे जब मार डालना। मैं रोज यहां मिलता हूँ। पर मुझे मारने से पहले, मुझसे जो हो सकता है, वह काम तो मुझसे ले लो!’

नाथूसिंह का तना हुआ रिवाल्वर हाथ से छूट गया। रोते-रोते उसने बापना साहब के चरण पकड़ लिये। बापना साहब ने उसे उठाकर गले से लगा

लिया। अपना रूमाल निकालकर उसके आंसू पोंछे, उसका मुंह पोंछा। फिर कहा—‘तुम्हें जो तकलीफ हो, मुझे सुनाओ।’

नाथूसिंह ने अपनी मुसीबत की सारी कहानी कह सुनायी। उसने बताया कि पुलिस किस तरह झूठे मुकदमे चलाकर उसे सता रही है।

फिर वह बोला—‘मैं अब ऊब उठा हूँ इस जीवन से।’

बापना साहब ने उसे ढाढस बंधाया और कहा—‘तुम सारी बातें लिखकर मुझे दे दो।’

दूसरे दिन नाथूसिंह ने सारी कहानी लिखकर उन्हें दे दी। उन्होंने सारी फाइलें तुरन्त मंगवाकर सारे मामलों का निपटारा करा दिया।

नाथूसिंह की मुसीबतों के सारे बादल छंट गये।

कसूर मेरा है, भाभी का नहीं

कोई बीस साल पहले की घटना है हरियाणा के एक नगर की।

एक सम्पन्न परिवार में चोरी हो गयी।

कोई दो हजार का गहना चोरी चला गया। घर की मालकिन ने अफवाह उड़ा दी कि यह चोरी उसके देवर की करतूत है।

उसके पति ने लाख समझाया, पर वह नहीं मानी। देवर से उसकी पटती नहीं थी। चोरी के बहाने वह उसे घर से निकलवा देना चाहती थी।

पर ऐसा हो नहीं सका।

बड़ा भाई मानता था कि उसके भाई का कोई कसूर नहीं है।

बाद में पुलिस ने असली चोरों को पकड़ लिया और माल भी बरामद कर लिया।

पर भाभी का देवर के प्रति रुख न बदला सो न बदला।

× × ×

एक दिन देवर खाना खाते ही बेहोश हो गया। बड़ा भाई उसे अस्पताल ले गया।

जहर के लक्षण देखकर उसे उलटी आदि करायी गयी।

तत्काल उपचार होने से उसकी जान बच गयी। पर अस्पताल वालों ने पुलिस में रिपोर्ट कर दी। उधर घर के नौकर ने मालिक को बता दिया कि ‘मैं ही मालिकन के कहने पर जहर लाया था।’

पुलिस की जांच आने पर मालिक ने कह दिया कि ‘मुझे इस घटना में अपनी पत्नी का हाथ लगा दीखता है।’

पुलिस ने उसकी पत्नी को गिरफ्तार कर लिया।

× × ×

मुकदमा चला तो छोटे भाई ने हलफिया बयान दिया, उससे मुकदमे का रुख ही बदल गया। उसने कहा—‘मैं परीक्षा में फेल हो गया था, इससे आत्महत्या करना चाहता था। मैंने ही कुछ इनाम देकर नौकर से जहर मंगवाकर भोजन में मिला लिया था। भाभी ने एक दिन गुस्सा में नौकर को डांट दिया, इसी से उसने जहर देने में भाभी का नाम ले लिया है। दर-असल कसूर मेरा है, भाभी का नहीं।’

अदालत ने भाभी को बरी कर दिया। देवर को छः महीने की कैद की सजा दे दी।

देवर के त्याग, प्रेम और बलिदान ने भाभी का हृदय पलट दिया। वह रो पड़ी—फफ्क फफककर।

देवर के जेल से छूटकर आने पर भाभी का व्यवहार पहले से एकदम बदल गया। वह जी-जान से देवर पर अपना स्नेह उड़ेलने लगी।

उत ते वे फल देत

‘यह लो एबर्ट!’—कहते हुए एक लड़के ने ब्लैकबोर्ड का पोतना स्याही और खड़िया में भिगोकर मास्टर एबर्ट के मुंहपर फेंक मारा।

पोतना एबर्ट के कन्धे पर लगा। उनके चेहरे पर, उनकी सफेद कमीज पर स्याही के धब्बे पड़ गये।

एबर्ट ने जेब से रूमाल निकाल कर अपना मुंह पोंछ डाला। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा—‘बच्चे, एक शैतानी हो गयी, अब बस!’

फिर उन्होंने धीरे से कहा—‘कमीज खराब हो गयी!’

इतना कहकर वे लड़कों की कापियां जांचने लगे। बच्चों को सुलेख—खुशाखती सिखाना उनका काम था।

× × ×

यह घटना है सन् सत्तावन की। 1957 की नहीं, 1857 की।

उन दिनों रूस में एक फौजी स्कूल था। बड़े-बड़े रईसों और जमीदारों के लड़के उसमें पढ़ते थे। पास होने पर ये ही लड़के रूस के सम्राट जार के पार्षद बनते थे और सरकारी फौज के ऊंचे ओहदे संभालते थे।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी प्रिंस क्रोपाटकिन भी उन दिनों इसी स्कूल में पढ़ते थे। बड़ी कोशिश-पैरवी के बाद उन्हें यहां के पांचवें दर्जे में प्रवेश मिला था।

एबर्ट—सीधा-सादा एबर्ट, गरीबी का मारा एक अध्यापक था। बेचारे को किसी तरह यहां नौकरी मिल गयी थी।

दूसरे अध्यापकों का तो लड़के कुछ सम्मान भी करते थे, पर एबर्ट के साथ वे अच्छा व्यवहार भी नहीं करते।

दो-दो, तीन-तीन साल के फेलशुदा लड़कों की शरारत का तो पार ही न रहता। वे लोग एबर्ट को बहुत सताते।

एबर्ट ने परिस्थिति से मानो समझौता कर लिया था—‘एक दिन में एक शैतानी।’

पर ढीठ लड़कों को भला इतने से भी कहां संतोष!

× × ×

उस दिन जब एबर्ट को पोतना खींचकर मारा गया तो शैतानी की हद हो गयी। लड़के सोचने लगे कि आज तो एबर्ट निश्चय ही प्रिंसिपल के पास जाकर शिकायत करेंगे।

पर एबर्ट ने ऐसा कुछ नहीं किया।

यह देखकर लड़के सब सन्न रह गये।

सबको इस खोटी करनी पर शर्म आयी।

क्रोध और घृणा पर प्रेम का मलहम लगाते देख कक्षा के सभी विद्यार्थी एबर्ट के पक्ष में हो गये।

शरारती लड़के से सबने कहा—‘तुमने बड़ी धृष्टता की है।’

एक लड़के ने जोर से चिल्लाकर कहा—‘मास्टर जी गरीब हैं। तुमने उनकी कमीज खराब कर दी। तुम्हें शर्म आनी चाहिए।’

शरारती लड़का तुरन्त उठा। उसने एबर्ट के पास जाकर उनसे माफी मांगी।

उन्होंने धीरे से कहा—‘आपको सीखना चाहिए।’

× × ×

दूसरे दिन से सब विद्यार्थी शान्त हो गये।

एबर्ट के व्यवहार ने, उनकी उदारता और क्षमा ने जादू का काम कर दिया।

सबमें मानो होड़-सी लग गयी कि हम अपने खुश-खत से मास्टर जी को खुश करेंगे।

क्रोपाटकिन अपने संस्मरणों में लिखते हैं कि ‘एबर्ट गुरु की क्षमा और प्रेम का यह उदाहरण मुझे कभी नहीं भूला।’

‘इत ते वे पाहन हनें, उत ते वे फल देत!’

× × ×

प्यार करने वाले से प्रेम करना आसान है।

भलाई करने वाले के साथ भलाई करना आसान है। पर वैर-विरोध करने वाले के साथ प्रेम करना, बुराई करने वाले के साथ भलाई करना कठिन है। उसी में कसौटी है—हमारी इंसानियत की, हमारी मनुष्यता की।

धन्य है वह मानव, जो वैर का बदला प्रेम से और बुराई का बदला भलाई से देता है; कांटों के बदले में फूल बिखेरता है और विष के बदले में अमृत दुलकाता है।

काश, हम इस कसौटी पर खरे उतर सकें!

(साभार : कल्याण, गीताप्रेस)

व्यवहार वीथी

चित्त-शुद्धि के साधन

दुनिया अनेक स्वभाव, संस्कार, गुण, कर्म, विचार वाले लोगों का संग्रहालय है। यहां कोई सज्जन है तो कोई दुर्जन, कोई चरित्रवान है तो कोई चरित्रहीन, कोई संत है तो कोई असंत, कोई पुण्यात्मा-महात्मा है तो कोई पापात्मा-दुरात्मा, कोई सब प्रकार से संपन्न-सुखी है तो कोई सब प्रकार से विपन्न-दुखी। दुनिया में कोई ऐसी जगह नहीं है जहां कम-ज्यादा संख्या में सब प्रकार के लोग न रहते हों और जिनसे संपर्क-संबंध के बिना मनुष्य जीवन जी सके। जिस प्रकार के स्वभाव, संस्कार, गुण, कर्म के लोगों के साथ संपर्क, संबंध, व्यवहार रखना होता है उनके स्वभाव, संस्कार, गुण, कर्म का हमारे अपने मन पर प्रभाव तो पड़ता ही है, उनके बारे में सुनकर तथा उनको देखकर मन में अनेक प्रकार की भावनाएं उठने लगती हैं। जिस प्रकार पानी की स्वाभाविक गति नीचे ढलान की ओर बहना है उसी प्रकार मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति बन गयी है गलत संस्कार ग्रहण करना और गलत भावना पैदा करना और पालना। जैसे पानी को ऊपर चढ़ाने के लिए मेहनत करनी पड़ती है वैसे ही मन में अच्छे संस्कार ग्रहण करने और अच्छी भावना रखने के लिए काफी प्रयत्न और अभ्यास करना पड़ता है।

यदि हमारे मन की भावनाएं शुद्ध हैं, शुभ हैं तो चित्त शुद्ध रहेगा और हम सच्ची प्रसन्नता का अनुभव कर सकेंगे और प्रसन्नतापूर्वक जीवन जी सकेंगे, किन्तु हमारी भावनाएं अशुद्ध-अशुभ हैं तो चित्त अशुद्ध रहेगा और बाहर सब कुछ ठीक होते हुए भी हम प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर सकेंगे और न प्रसन्नतापूर्वक जीवन जी सकेंगे। ध्यान रखें, सुख-दुख, प्रसन्नता-क्लेश का कारण बाहरी चीजों-सुविधाओं का बढ़ना-घटना नहीं है किन्तु चित्त-मन की शुभ-अशुभ भावनाएं एवं शुद्धि-अशुद्धि हैं। यदि चित्त-मन की भावनाएं अशुभ-

अशुद्ध हैं तो बाहर कहीं भी चले जायें, कुछ भी पा जायें और बन जायें आध्यात्मिक उन्नति तो होगी नहीं सुखपूर्वक जीवन भी नहीं जी सकेंगे और यदि चित्त-मन की भावनाएं शुभ-शुद्ध हैं तो आध्यात्मिक उन्नति भी होगी तथा जहां हैं वहीं थोड़ी वस्तुओं-सुविधाओं के बीच रहते हुए सुखपूर्वक जीवन जी सकेंगे।

लोगों के स्वभाव, संस्कार, गुण-कर्मों को तो नहीं बदला जा सकता, केवल उन्हें राय-प्रेरणा दी जा सकती है। यदि बदला जा सकता है तो अपने चित्त-मन की भावनाओं को। अभ्यास-प्रयत्न द्वारा अपने चित्त-मन की अशुभ भावनाओं को बदलकर चित्त-मन को शुद्ध बनाकर रखा जा सके तो यह जीवन की एक महत्तम उपलब्धि होगी। बाहरी पद, प्रतिष्ठा, वैभव को बढ़ाने के लिए तो परिश्रम-प्रयत्न कर ही रहे हैं, थोड़ा प्रयत्न और अभ्यास द्वारा चित्त-मन की अशुभ भावनाओं को बदलकर शुभ-शुद्ध बनाकर सुख-प्रसन्नता पूर्वक जीवन जीयें, साथ ही आध्यात्मिक उन्नति कर जीवन को सफल बनायें। किस गुण-कर्म के लोगों को देख-सुनकर कैसी भावना रखकर चित्त को कैसे शुद्ध करें इसके लिए महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में बताया है—

*मैत्रीकरुणा मुदितोपेक्षाणां सुख-दुःख पुण्यापुण्याणां
भावनातश्चित्तप्रसादनम्।*

अर्थात्—सुखी, दुखी, पुण्यात्मा और पापात्मा के प्रति क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा भावना रखकर चित्त को शुद्ध रखा जा सकता है।

हम इन पर क्रमशः थोड़ा विचार करें—

मैत्री—मैत्री अर्थात् मित्रता का भाव। सुखियों के प्रति मित्रता का भाव। मनुष्य का स्वभाव है कि वह प्रायः दूसरों के सुख, समृद्धि एवं उन्नति को सहन नहीं कर पाता और उसके मन में उनके प्रति ईर्ष्या-जलन होने लगती है कि ये इतने सुखी, समृद्ध एवं उन्नत क्यों हैं या क्यों हो गये। ऐसा करके वह दूसरों का तो कुछ नुकसान नहीं कर पाता अपने चित्त-मन को कलुषित-अशुद्ध-मलिन बना लेता है और जिसका चित्त-मन ही कलुषित-अशुद्ध है वह कभी सुखी हो ही नहीं सकता,

क्योंकि उसका मन हर समय पापी बना रहता है। जिसका मन पापी है, पाप से भरा है वह दुनिया का वैभव-ऐश्वर्य, पद-प्रतिष्ठा तो प्राप्त कर सकता है, सुखपूर्वक जीवन नहीं जी सकता।

ध्यान दें, दूसरों की सुख-समृद्धि को सहन न कर पाना, उनके प्रति ईर्ष्या-जलन रखना भयंकर पाप है और यह पाप स्वयं अपने कर्ता को अंदर-अंदर रात-दिन पीड़ित-संतापित करता रहता है। सुखियों के प्रति मित्रता का भाव रखने से मन में ईर्ष्या-जलन नहीं होती, बल्कि मित्र की सुख-समृद्धि को देखकर मन में प्रसन्नता होती है। मित्रता का लक्षण ही है मित्र के सुख को देखकर सुखी होना और दुख को देखकर दुखी होना।

मनुष्य दूसरों के लिए कुछ कर सके या न कर सके, किसी को कुछ दे सके या न दे सके यह भावना तो रख सकता है कि दुनिया में सब सुखी रहें, आगे बढ़ें और सबका कल्याण हो। जो ऐसी भावना भी नहीं रख सकता, उसका चित्त कितना कलुषित एवं मलिन है, सहज समझा जा सकता है। फिर वह आदमी सुख-पूर्वक जीवन कैसे जी सकता है।

यहां प्रसंग है सुखियों के प्रति मैत्री भाव का। सुखियों के प्रति मैत्री भाव रखने से अपने चित्त-मन का ईर्ष्या-मल दूर होकर चित्त-मन शुद्ध बना रहता है और शुद्ध चित्त से व्यवहार-परमार्थ का काम सही ढंग से संपन्न होता है। हर आदमी को यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे ईर्ष्या-जलन करने से न तो दूसरों का सुख घटेगा, न उन्नति रुकेगी। हां, हमारा अपना सुख घट जायेगा और हमारी जो शक्ति सेवा-साधना में लगकर हमारे कल्याण का कारण बनती वह ईर्ष्या-जलन में व्यर्थ नष्ट होती रहेगी। इस व्यर्थ की हानि से बचने का सर्वोत्तम उपाय है मात्र सुखियों के प्रति ही नहीं प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भाव।

करुणा—करुणा का अर्थ है दुखियों के दुख को देखकर द्रवित हो जाना और यथासंभव उनके दुखों को दूर करने का उपाय करना। संसार में मात्र सुखी लोग

ही नहीं रहते, दुखी लोग भी रहते हैं, बल्कि सुखियों की अपेक्षा दुखियों की संख्या ज्यादा है। जैसे सुखियों को देखकर ईर्ष्या-जलन होती है वैसे दुखी-रोगी को देखकर घृणा होती है और किसी के प्रति घृणा करने का अर्थ है अपने चित्त-मन को कलुषित-मलिन बनाना। जितना बन सके दुखियों के दुखों को दूर करने का, उनकी सेवा करने का प्रयास करना चाहिए किन्तु कई बार कुछ ऐसी मजबूरियां होती हैं कि चाहते हुए भी सेवा नहीं की जा सकती। सेवा न कर पाना, किसी के दुख को दूर न कर पाना गलत या दोष नहीं है, गलत और दोष है दुखियों को देखकर घृणा करना, उन्हें दुत्कार देना, उनका तिरस्कार करना। ऐसा करना अपने लिए भयंकर दुखों का बीज बोना है।

हर मनुष्य स्वयं सोच सकता है कि किसी प्रकार का रोग-दुख आने पर मैं स्वयं अपने लिए दूसरों से कैसा व्यवहार चाहता हूँ—प्रेम, स्नेह, सेवा का या घृणा, अपमान, तिरस्कार का। बस, जैसा व्यवहार हम दूसरों से अपने लिए चाहते हैं वैसे दूसरों के प्रति स्वयं करना शुरू कर दें।

करुणा अहिंसा का दूसरा पहलू है, परंतु अहिंसा निष्क्रिय साधन है और करुणा सक्रिय। अहिंसा का अर्थ है तन-मन-वचन से किसी की हिंसा न करना, किसी को चोट न पहुंचाना, दुख न देना और करुणा का अर्थ है तन-मन-वचन से दूसरों के दुख-पीड़ा को दूर करने का प्रयास करना। यद्यपि सबको अपने अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार ही सुख-दुख मिलते हैं, परंतु एक सच्चे मनुष्य के मन में यही भावना होती है कि दुनिया में जो भी दुख मिले मुझे मिले, मेरे सिवा किसी अन्य को कोई दुख न मिले। कहां तो ऐसी उदात्त भावना और कहां दुखियों को देखकर उनसे घृणा करना। यह तो अपने चित्त की भयंकर मलिनता है। ऐसी मलिनता रखकर सुखपूर्वक जीवन कैसे जीया जा सकता है।

घृणा हृदय की क्रूरता एवं कठोरता का परिचायक है और भयंकर पाप है, क्योंकि हृदय क्रूर एवं कठोर

हुए बिना किसी के प्रति घृणा हो ही नहीं सकती और जिसका हृदय क्रूर एवं कठोर है वह व्यक्ति धर्म-परमार्थ को समझ नहीं सकता। भक्तप्रवर श्री नरसिंह मेहता जी का यह प्रसिद्ध भजन है—‘वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे।’ गोस्वामी तुलसीदास जी का महावाक्य है—‘दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान। तुलसी दया न छाँड़िये, जब लग घट में प्रान।’ सद्गुरु कबीर कहते हैं—‘जहाँ दया तहाँ धर्म है’ और ‘जाके दया धरम नहीं मन में, मुखड़ा क्या देखे दरपन में।’

घृणा के मूल में है क्रूरता और कठोरता तथा क्रूरता-कठोरता के मूल में है अभिमान-अहंकार। सारे पाप के मूल में कठोरता-क्रूरता, अभिमान-अहंकार ही है। इस पाप से बचने का सरलतम और सुंदर उपाय है करुणा। यदि चित्त-मन को सरल, कोमल, पवित्र और शुद्ध बनाकर हर समय प्रसन्नता का अनुभव करते रहना चाहते हैं तो अपने हृदय-मन को करुणाशील बनाकर रखें। करुणा मनुष्यता की पहचान है।

मुदिता—मुदिता का अर्थ है प्रसन्नता। पुण्यात्माओं, सज्जनों-संतों को देखकर प्रसन्नता। इससे असूया दोष दूर होकर चित्त शुद्ध होता है। असूया का अर्थ है गुणों में दोष देखना-ढूँढना। जैसे चींटी हर जगह छिद्र ढूँढते फिरती है वैसे कुछ लोग हर किसी में दोष ढूँढते फिरते हैं। जब किसी पुण्यात्मा, संत, सज्जन में उन्हें कोई दोष दिखाई पड़ जाता है तब वे वैसे ही खुश हो जाते हैं जैसे उन्हें गड़ा हुआ खजाना मिल गया हो। फिर तो वे उनकी निंदा में डट पड़ते हैं और ऐसा करके अपने चित्त को और अधिक कलुषित एवं मलिन बना लेते हैं।

कलुषित हृदय-मन का व्यक्ति यह नहीं सोच पाता कि दुनिया में जितने अधिक पुण्यात्मा, संत, सज्जन होंगे और उनका जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही दुनिया का मंगल होगा। उसे पुण्यात्मा, संत, सज्जनों के प्रचार से या उनकी उपस्थिति से अपने दोष उघड़ जाने का भय होता है। इसीलिए वे पुण्यात्माओं-संतों-सज्जनों में दोष खोजते फिरते

हैं, ताकि उसका अपना दोष ढका रहे।

पुण्यात्माओं, संत-सज्जनों को देखकर मुदित-प्रसन्न होने से अपने मन का असूया दोष दूर होता है और स्वयं उनके जैसा बनने की प्रेरणा मिलती है। पुण्यात्माओं, संत-सज्जनों के बीच और संग-साथ रहकर कोई भी व्यक्ति व्यवहार-परमार्थ का काम अच्छी तरह से कर सकता है और सुख-शांति पूर्वक जीवन जी सकता है। अतः हम स्वयं पुण्यात्मा, संत-सज्जन न बन सकें तो कम से कम उन्हें देखकर खुश और प्रसन्न रहना तो सीखें। इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता है। जितना-जितना हम पुण्यात्माओं, संतों, सज्जनों को देखकर मुदित-प्रसन्न होते जायेंगे उतना-उतना हमारे चित्त का कालुष्य धुलकर वह शुद्ध-निर्मल होता जायेगा और हमारा सच्चा सुख उसी मात्रा में बढ़ता चला जायेगा।

हम पुण्यात्मा, संत-सज्जनों को देखकर प्रसन्न तो जरूर होंगे, उनमें दोष देखना बंद तो करें ही, स्वयं अपने को पुण्यात्मा, संत, सज्जन न मान लें और यदि कोई हमें हमारा कोई दोष या गलती बताये तो दुखी न हो जायें और उसे अपना विरोधी या निंदक मानकर उसके प्रति वैर-द्वेष भाव न पालें। यदि अपनी निंदा या दोष सुनकर दुखी होते हैं और दोष बताने वाले के प्रति वैर-विरोध का भाव रखते हैं तो यह हमारे चित्त की मलिनता का परिचायक है। उसे तो धन्यवाद देकर हमें अपने दोष को दूर करने का काम करना है। हर हाल में हमें अपने चित्त को शुद्ध रखना है। ध्यान रखें, निर्दोष और शुद्ध चित्त में ही पुण्यात्माओं-संतों-सज्जनों को देखकर प्रसन्न हुआ जा सकता है, दोषी और अशुद्ध चित्त बनाकर नहीं।

उपेक्षा—उपेक्षा का लोक प्रचलित अर्थ है तिरस्कार, अनादर, अवहेलना परंतु यहां यह अर्थ नहीं है। यहां उपेक्षा का अर्थ है—तटस्थता, उदासीनता, न मोह न वैर। दुनिया में केवल पुण्यात्मा ही नहीं होते, बहुत-से लोग पापात्मा, दुरात्मा, दुष्टात्मा भी होते हैं। ऐसे लोगों के संग-साथ रहना, उनसे प्रेम-व्यवहार रखना कभी हितकर नहीं होता, किन्तु उनसे वैर रखना

भी हितकर नहीं होगा, क्योंकि किसी के प्रति वैर रखने से हमारा अपना चित्त ही कलुषित-मलिन-अशुद्ध होगा। इसलिए ऐसे लोगों के प्रति उपेक्षा, तटस्थता, उचित दूरी बनाकर रखना ही हितकर होता है।

आप कहीं भी चले जायें कम-ज्यादा ऐसे लोग मिलेंगे ही। ऐसे लोगों से कुशल-मंगल पूछकर या आवश्यक कार्य-व्यवहार निपटाकर अलग हो जाना है। ऐसे लोग यदि कोई काम बिगाड़ दे या नुकसान कर दे तो प्रतिक्रिया में न पड़कर चुप-शांत होने में ही अपनी भलाई है। हां, ऐसे लोगों के प्रति भी मंगलकामना करते रहना है कि इनकी बुद्धि-समझ ठीक हो और ये गलत रास्ता छोड़कर सही रास्ते पर चलकर अपना कल्याण करें।

इसी उपेक्षा-तटस्थता भाव के लिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—

कबीर खड़ा बाजार में, सबकी मांगे खैर।

ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।

संसार में सुखी-दुखी, पुण्यात्मा-पापात्मा सभी प्रकार के लोग होते हैं और जीवन यात्रा में कम-ज्यादा सबसे संपर्क, संबंध एवं व्यवहार रखना एवं करना पड़ता है। इन सबके प्रति क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा का भाव रख कर अपने चित्त को शुद्ध बनाकर रखा जा सकता है और यथायोग्य सबके साथ प्रेम, समता, सेवा का व्यवहार करते हुए जीवन-यात्रा सुगमतापूर्वक पूरी की जा सकती है तथा आध्यात्मिक उन्नति भी की जा सकती है।

—धर्मेन्द्र दास

लोग आपकी क्यों नहीं सुनते?

लेखक—श्री दीपक चोपड़ा

जब किसी बच्चे की बात को गंभीरता से सुना जाता है, तो अपनी नजरों में वह थोड़ा और ऊपर उठ जाता है। लेकिन इसके लिए उन्हें सुना जाना प्रमुख और महत्वपूर्ण बात है। वयस्कों पर भी यह बात लागू होती है। अगर आप अपनी बात से किसी का ध्यान कुछ देर के लिए खुद पर रोक नहीं पाते, तो खुद को बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। दरअसल इसका एक मतलब यह भी होता है कि आगे चलकर लोग आप पर ही ध्यान देना बंद कर दें।

अगर आपको लगता है कि आपकी तो कोई सुनता ही नहीं, तो सोचिए कि इसका कारण क्या हो सकता है? इसका मतलब यह नहीं है कि इसका कारण हम दूसरों में दूढ़ने लगें, ना ही इसका एक मतलब यह है कि आप गलत हैं। समस्या है संवाद की और यह हम सब जानते हैं कि संवाद एक दोतरफा प्रक्रिया है। इसको ध्यान में रखते हुए घर हो या ऑफिस मुझे ऐसे

सात स्पष्ट कारण समझ में आते हैं, जिनके कारण हो सकता है कि लोग आपकी बात पर ध्यान नहीं देते हों—

- अगली बार जब आप अपनी बात किसी से कहना शुरू करें, तो एक बात पर गौर करें। कहीं आपकी शुरुआत उलझी हुई तो नहीं होती? इस कारण बात पहली बार में ही जमती नहीं। आप बात कुछ यूँ शुरू करते हैं कि उसमें निहित संदेश लोगों को दूढ़े नहीं मिलता। कुछ ऐसे कि मानो माला पिरोते समय एक गांठ लगाना भूल गए और पूरी बात बिखरकर रह गई।
- हो सकता है कि उसी समय किसी और चीज ने उनका ध्यान अपनी ओर खींच लिया हो।
- वे आपकी बात में रूचि नहीं रखते, लेकिन वे इसे आपसे कह नहीं पा रहे हैं।

- वे दिनभर इतने लोगों की सुनते हैं कि ना चाहते हुए भी उनका ध्यान बंट जाता है।
- हो सकता है कि आप जो कह रहे हैं, उस व्यक्ति की उससे जुड़ी कुछ निजी धारणाएं हों।
- आपने अपनी बात कहना उस समय शुरू किया, जब व्यक्ति सुनने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं हो पाया था।
- आप दूसरे व्यक्ति पर कुछ ज्यादा ही दबाव डाल रहे हों, क्योंकि तनाव के चलते लोग किसी बात पर ध्यान देना बंद कर देते हैं।
इन सारे कारणों का हल भी निकाला जा सकता है। इसके लिए अपनी बात कहते समय आप थोड़ी सतर्कता बरतने की आदत डालें, ताकि आपकी बात से ध्यान हटाने वाली हर बाधा को आप तुरंत रफा-दफा कर सकें। अगर चाहते हैं कि लोग आपकी बात को एक समझदार व्यक्ति का नजरिया मानकर ध्यान से सुनें, तो अपने में कुछ बदलाव जरूर लाएं।
- तर्कों में अति ना करें। इसे कम करके केवल एक बिंदु बनाएं। यह जरूरी है कि आप भी इस एक बिंदु से सहमत हों। फिर यदि स्पष्टता है तो कहें। फिर यह समझने की कोशिश करें कि क्या आपकी यह बात सुनी गई? अगर आपको लगता है कि वे आपकी बात नहीं सुन रहे, तो एक बार मुद्दे पर उनकी राय भी पूछें। किसी भी कीमत पर एक साथ बहुत सारे पक्ष-विपक्ष के साथ बात न करें, वरना वे एक-दो वाक्यों के बाद ही ध्यान देना बंद कर देंगे।
- कहते हैं बात हमेशा मौका और दस्तूर देखकर की जाती है। आप अपनी बात तब कहें, जब सुनने वाले का ध्यान एक से अधिक चीजों पर ना हो। कई बार यह मुश्किल काम ही होता है। ऐसे में यह बिल्कुल ना पूछें कि क्या आपके पास एक मिनट है? क्योंकि अधिकतर लोग नम्रता में 'हां' तो कह देंगे, पर आपकी बात को गंभीरता से सुनें, मुश्किल ही है।

- जो लोग आपकी बात में रूचि दिखाएं, उन्हें ही अपनी बात सुनाएं, वरना उत्साह कम ही होगा। उनकी अनिच्छा होते हुए भी उन्हें आपकी बात सुननी पड़ी, इस पर नाराजगी भी हो सकती है। इससे बेहतर है कि आप उनसे पूछ लें। अगर उन्होंने ना कहा भी, तो कम से कम आपके और उनके बीच ईमानदारी का रिश्ता तो कायम हो ही जायेगा।
- बहुत सारे लोग ऐसे होते हैं, जो सुनने की एक्टिंग में माहिर होते हैं। दरअसल हर आदमी उनसे दो मिनट बतियाना चाहता है। ऐसे में वह यह आदत विकसित कर लेते हैं। ऐसे लोग भी आपकी बात में रूचि लें, ऐसा चाहते हैं, तो उनसे अपनी बात कहिए, जिनकी बात पर वे अति व्यस्त लोग भी ध्यान देते हैं।
- अपनी बात से किसी की दुखती रग को छू देना बहुत अच्छी बात नहीं है। अगर ऐसा हो, तो क्षमा मांगते हुए वहां से हट जाएं। उसकी भरपाई करने वाले तर्क ना दें।
- अगर आप गलत वक्त पर अपनी बात शुरू कर बैठे हैं और अचानक यह बात आपको पता चलता है, तो अपनी बातें वहीं रोक दें। अपनी बात पूरी करने के लिए अड़े रहना अच्छा संदेश प्रेषित नहीं करेगा।
- अपनी बात कहने के लिए बहुत ज्यादा कोशिश ना करें। कई बार ज्यादा दबाव से और विरोध ही मिलता है। इसे भांपकर अपनी बात को आगे के लिए टाल दें। इसका मंत्र यही है कि पहले एक जुड़ाव बनाया जाए। थोड़ा निजी और गंभीर वातावरण बनने दें। जब कोई अपने बंधे हाथ आराम से खोलकर बात करने लगे, जब कोई आपकी आंखों में देखकर बात करने लगे या मुस्कराने लगे, तो इसका मतलब एक जुड़ाव बन चुका है। अब वह आपकी बात सुनेगा भी। आशा करता हूं कि मेरे इन तरीकों से आपकी खुद से यह शिकायत खत्म होगी कि लोग आपकी सुनते नहीं। खुशी की राह पर आगे बढ़ते रहें।

(साधार दैनिक हिन्दुस्तान, 28-9-2015)

आडम्बरवाद

लेखिका—श्रीमती रजनीश

आज का युग कहने को तो आधुनिक युग है। विज्ञान, साहित्य, चिकित्सा, कृषि व अन्य क्षेत्रों में मनुष्य ने खूब प्रगति की है। लेकिन आडम्बर की चादर ने अच्छे-अच्छे शिक्षित व पंडित कहलाने वालों को ढक रखा है। जैसे साहेब कहते हैं कि 'धूँघट का पट खोल री तोको पीव मिलेंगे।' ऐसे ही 'आडम्बर का पट खोल रे तोको विवेक रूपी गुरु मिलेंगे।'

परम्पराओं का बोझ ढोते-ढोते मनुष्य बूढ़े बैल की तरह थक कर चूर हो जाता है। जो परम्पराएं सड़-गल गई हैं उनसे न समाज का भला होता है और न ही निजी जीवन में कोई विशेष लाभ होता है। उनको छोड़ने में कोई बुराई नहीं है। कुछ स्वस्थ परम्पराएं हैं जो कि आजीवन निर्भारिणी जानी चाहिए। उनसे हमें अपने सांचे में फिट रहने में मदद मिलती है।

परम्परा है क्या? भिन्न-भिन्न मानसिकता के लोगों की दृष्टि में इसकी परिभाषा भिन्न-भिन्न हो सकती है। मूलतः जो मान्यताएं काफी समय से चली आ रही हैं उन्हें ही परम्पराएं कहते हैं।

शनिवार को लोहा नहीं खरीदना, रविवार को तुलसी में पानी नहीं देना, मंगलवार को उत्तर दिशा में नहीं जाना, अमुक दिन बाल नहीं बनवाना, अमुक दिन नाखून नहीं काटना; किसी के छोंक देने पर, छूँछा घड़ा, विधवा स्त्री देख लेने पर, बिल्ली के रास्ता काट देने पर अशुभ-अपशकुन मानना, शाम के समय नमक और हल्दी न खरीदना, मंगलवार को नया कपड़ा न पहनना, श्राद्ध-पितर पक्ष में झाड़ू न खरीदना, नया सामान न खरीदना आदि सब सड़ी-गली मान्यताएं हैं। आदमी को भ्रम-भय से पीड़ित करने वाली हैं।

ये सब परम्पराएं आडम्बर के तंतु हैं। इन तंतुओं से मिलकर ही आडम्बर का पट तैयार होता है। कहने-सुनने में ये बहुत छोटी-छोटी बातें हैं लेकिन इन बातों को यदि नकारा न जाये तो ये मानस पटल को धुंधला करने में पूरा-पूरा योगदान देती हैं।

एक बार मैं दुकान पर कुछ सामान लेने गई। ध्यान आया झाड़ू भी लेना है। मैंने दुकानदार को झाड़ू देने के लिए कहा। मेरे पास ही एक और स्त्री खड़ी थी, वह

कहने लगी—अरे, श्राद्ध के दिनों में झाड़ू नहीं लेते हैं। मैंने कहा—क्यों? श्राद्ध के दिनों में सूरज पश्चिम से निकलता है क्या? वही सूर्योदय होना, वही अस्त होना। प्रकृति का अपना नियम जारी है। जड़ चीजों की खरीदारी हम कभी भी कर सकते हैं।

कोई कहता है श्राद्ध के दिनों में कटिंग नहीं करवाना, नये कपड़े नहीं खरीदना। अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखों के मुंह से जब ये बातें सुनती हूँ तो बड़ा अजीब लगता है। 'किस-किस को समझाइए कुएं भांग पड़ी।'

श्राद्ध अधिकतर लोग भय से निकालते हैं। यदि श्राद्ध के दिन कुछ मीठा भोजन नहीं बनाया, गाय को रोटी नहीं दी, दान-दक्षिणा नहीं दिया तो पता नहीं क्या हो जायेगा। पितृ हावी हो जायेगा, जब माता-पिता जीवित होते हैं तब चाहे उन्हें भोजन भी न देते हों लेकिन मरणोपरान्त उनके श्राद्ध वाले दिन खीर, हलवा पूरी बनाएंगे। यह कैसी मातृ-पितृ भक्ति है।

तेरा हरि से मिलन कैसे होय सत्संग में सूरता आवती नहीं॥

जाटी चौकूँ, पीपल पुजूँ सिर तुलसी के होय,

दूध पूत में खैर राखिए मैं पुजूंगी तोय।

और देव की पूजा करती करे राम से बैर।

साधु-देखे तेरा माथा टिनके कुशल कहां से होय।

बार-बार समझाई मेरी सूरता एक ना मानी तोय।

कहत कबीर सुनो भाई साधो ब्याज मूल चली खोय।

हम लकीर के फकीर बने हुए हैं। बिना सोचे-समझे लकीर पीट रहे हैं। पुरोहितों ने हमें लकीर पीटना सिखाया है। मर्म हमसे छिपाकर रखा गया। कहा माथे पर चंदन का टीका लगाओ, लेकिन चंदन का टीका लगाने के लाभ नहीं बताये। शीतला माता की पूजा में नीम की बात कही, लेकिन नीम का गुण नहीं बताया। कहा पीपल में पानी चढ़ाओ। बस चढ़ाओ। क्यों चढ़ाओ? इसका जवाब नहीं। पूजा करो। पूजा करोगे तो कुछ-न-कुछ चढ़ाओगे ही। पैसा, वस्त्र, फल। जो भी चढ़ाओगे वह पुरोहित जी के ही पास पहुंचेगा। उन्हें तो बस चढ़ावा चाहिए।

धर्म और ईश्वर के नाम पर फैलाये गये आडम्बर

एवं कुरीतियों का कबीर साहेब बार-बार खंडन करते हैं। आडम्बर एवं कुरीतियों में धंसे लोगों की मति मारी जाती है। यदि उनको कहीं से भी प्रकाश की किरण न मिले तो वे आजीवन इनका बोझा ढोते-ढोते बूढ़े हो जाते हैं।

“संत न होते जगत में तो जल मरता संसार।”

पंडित व तंत्र-मंत्र धारियों के पास अधिकतर शिक्षित व पैसे वाले लोगों को जाते देखा है। गृह-प्रवेश करवाना है, शादी-ब्याह सधवाना है या अन्य किसी भी प्रपंच के लिए चलो पंडित के पास। चाहे वह पंडित आचरणभ्रष्ट ही क्यों न हो फिर भी जायेंगे उसके पास। आजकल वास्तुशास्त्र की बीमारी चल पड़ी है। इनके पास जाते ही मनुष्य की बुद्धि घूमने लगती है। आज के दिन ये पहनना, फलां दिन ये करना वो करना तो तुम्हारा शुभ होगा। जितने अधिक पैसे दे दोगे उतना ही जल्दी लगन मुहूर्त भी निकल आयेगा और शुभ होने का झांसा भी मिल जायेगा। यदि इन लगन मुहूर्तों से शुभ होता तो पंडित, पुरोहित, ज्योतिषी, वास्तुशास्त्रियों के यहां कभी कोई दुर्घटना नहीं होती। वहां सब मंगल ही मंगल होता, लेकिन ऐसा कहां होता है।

कितने ही तंत्र-मंत्रधारी लोगों को अंगूठी-ताबीज पहनने को देते हैं कि तुम्हारा यह काम बन जायेगा वह काम बन जायेगा। इनसे कोई काम बने या न बने उनकी अंगूठी-ताबीज बिकने से उनको मुनाफा जरूर हो जाता है।

जो सत्यज्ञान का मोती पाना चाहते हैं उन्हें सब प्रकार के आडम्बरों से ऊपर उठना होगा। चाहे गृहस्थ के आडम्बर हों या फिर विरक्त के। सबका मोह और पक्ष छोड़ना ही पड़ेगा।

व्यक्ति अपने शील और कर्म से श्रेष्ठ होता है आडम्बर व जाति से नहीं।

“जल से नहाया हुआ आदमी स्वच्छ होता है लेकिन पसीने से नहाया हुआ आदमी पवित्र होता है।”

(रविदास जी)

परम्पराओं की पूंछ पकड़कर भेड़ चाल में शामिल होकर व्यक्ति न अपना भला कर सकता है और न ही समाज का। उसके लिए निष्पक्ष होकर विवेक के नेत्रों का प्रयोग करना आवश्यक है।

“लीक पर वे चलें कदम जिनके हारे हैं, हमको तो अपने निर्मित पंथ ही प्यारे हैं।” —अज्ञात

“कृत्रिम आगे कर्ता नाचे है अंधेर यही।

पार उतरना चाहे सिन्धु के श्वान की पूंछ गही।”

व्रत उपवासों का आडम्बर—शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से व्रत-उपवास कर लेना कोई बुरा नहीं है। लेकिन कुछ पाने की दृष्टि से स्वार्थवश व्रत-उपवास रखने का कोई महत्त्व नहीं है। अब नवरात्रों को ही ले लीजिए। नौ दिन तक “जय मां दुर्गा—जय मां दुर्गा” उसके बाद लाओ मुर्गा। यह कैसी भक्ति है?

काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार—इन सबको साधना ही नवरात्र है।

शुक्रवार को संतोषी माता का व्रत रखा, चलो रखा, जैसे भी शांति मिले ठीक है। कहते हैं कि इस दिन हम खटाई नहीं खाएंगे, और तो और जो लोग खटाई खाते हैं उस दिन उनको प्रसाद भी नहीं देंगे। जो मन में खटाई भरी पड़ी है एक-दूसरे के प्रति उसको कब निकालेंगे। उसका इलाज कब होगा? अगले जन्म में। तब तक तो बहुत देर हो चुकी होगी। आवश्यक है आडम्बर के दलदल से निकल कर अपने दुर्गुणों को धोने की प्रक्रिया में कड़ाई से लग जाना।

पण्डित-पुरोहित, बैगा-ओझा, ज्योतिषी-तान्त्रिक आदि धन लाभ के लिए यजमानों के मन में भूत-प्रेत, शकुन-अपशकुन, ग्रह-लग्न, मुहूर्त, दिशाशूल, योगिनी, दशा आदि अनेक भ्रांति डालकर उन्हें भ्रमित करते हैं और दुख निवारण के लिए पूजा-पाठ का चक्कर डालकर भोली-भाली जनता से धन ऐंठते हैं। यह सब ‘बे-काजा’ है। बिना मतलब का काम है।

“कितनो मनावो पांव परि, कितनो मनावो रोय।

हिन्दू पूजे देवता, तुरुक न काहू होय ॥”

(बीजक, साखी 98)

मुसलमान लोग एक महीना रोजा रखते हैं फिर जीव हत्या करके अपनी भक्ति की पुष्टि करते हैं।

“यह खून वह बंदगी क्यों कर खुशी खुदाय”।

तात्पर्य यह है कि बिना संत-सद्गुरु की शरण लिए, बिना स्वाध्याय एवं सत्संग किये आडम्बर व भ्रम का निवारण होने वाला नहीं है। सद्गुरु ही आडम्बर व भ्रम का परदा हटाकर निज स्वरूप दर्शाते हैं।

“मेरे सतगुरु दीन दयाल काग से हंस बनाते हैं।”

ये कार्य अन्य के वश का नहीं है।

घर

लेखक—सौम्येन्द्र दास

घर शायद दुनिया भर में सबसे प्यारा शब्द है। कोई चाहे जिस भाषा में पुकारे, घर तो केवल घर हो सकता है। जहां आत्मीयजन आपके आने की प्रतिक्षा कर रहे हों—वही है घर।

सिर छुपाने के लिए छाया चाहिए, मकान चाहिए जहां शरीर की रक्षा हो सके, लेकिन शरीर रक्षा के साथ, शरीर के सुख-दुख के साथ, कोई अपना भी चाहिए, जो मन की भावना और मन के सुख-दुख को समझ सके, उसी का नाम है घर।

मकान तो आप सुंदर से सुंदर बना लेते हैं क्योंकि उसके लिए आपके पास पर्याप्त बुद्धि और धन है लेकिन घर बनाना एवं घर बसाना इतना आसान नहीं है क्योंकि इसके लिए कोई अपना चाहिए, अपनों के बीच प्रेम चाहिए, प्रेम के लिए स्वार्थ एवं अहंकार का त्याग चाहिए, संस्कार चाहिए, संस्कृति चाहिए। केवल परिवार ही नहीं बल्कि अच्छी परिवारिश चाहिए, तब आपका मकान घर बनता है, आश्रम बनता है, मंदिर बनता है, स्वर्ग बनता है। इसके बिना तो मकान घर नहीं श्मशान बन जायेगा¹। मंदिर, मंदिर नहीं अपवित्र स्थल हो जायेगा। आश्रम आदर्श की नहीं विलासिता की जगह हो जायेगा और स्वर्ग नरक बन जायेगा।

सद्गुरु अभिलाष साहेब का एक सूत्र है—प्रेम में स्वर्ग है और अनासक्ति में मोक्ष है।

वृक्ष को हराभरा बनाये रखने के लिए पानी का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, वैसे ही आपस के संबंधों को सुमधुर बनाने के लिए प्रेम का योगदान होता है।

दरवाजा खटखटाने पर घर-मालकिन ने दरवाजा खोला तो देखा कि तीन लोग बाहर खड़े हैं। उसने तीनों का नमस्कार करते हुए तीनों को अंदर आने को कहा तो उन्होंने कहा कि हम तीनों में से एक ही अंदर आ सकते हैं, तीनों नहीं। परिचय पूछने पर उनमें से एक ने कहा—मैं प्रेम हूँ, ये यश हैं, और ये लक्ष्मी हैं। अब आप जिसको चाहें, उस एक को घर के अन्दर बुला

सकती हैं। मालकिन—तब तो मुझे अपने घर वालों से सम्मति लेनी पड़ेगी।²

सभी परिवार वालों की सम्मति से प्रेम को बुलाया गया, लेकिन यह क्या! साथ में लक्ष्मी और यश भी अंदर आ रहे हैं। पूछा गया तो बताया गया—जहां प्रेम है वहां लक्ष्मी और यश अपने आप आ जाते हैं। उन्हें बुलाना नहीं पड़ता। जहां प्रेम और सत्य है वहां प्रकृति अपने आप मेहरबान हो जाती है। वेद के ऋषि कहते हैं—

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः संतोषधीः।

अर्थात् जहां लोग नैतिकता और सदाचार पूर्वक जीवन जीते हैं तथा नियमों का पालन करते हैं, वहां हवाएं मधु ढोती हैं, नदियां मधु बहाती हैं तथा वनस्पतियां मधु बरसाती हैं।

संसार की विडंबना देखिये, लोग कहते हैं हम ईश्वर से प्रेम करते हैं, जिसे आज तक देखा नहीं और जिसे रोज देखते हैं उस इंसान से प्रेम नहीं करते, तो हम कैसे कहें कि वे ईश्वर से प्रेम करते हैं।

धरती पर जन्म देने वाले मां-बाप पहले गुरु हैं, पहले भगवान हैं, विधाता के रूप हैं। इनका आदर, सत्कार, सेवा होनी चाहिए। ऐसे मां-बाप को बार-बार प्रणाम है, बंदगी है।

गोस्वामी जी महाराज राम के लिए लिखते हैं—

*प्रातःकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥
आयुष मांगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषई मन राजा ॥*

(बालकाण्ड)

श्रीराम जी प्रातःकाल उठकर माता-पिता और गुरु को मस्तक नवाते हैं और आज्ञा लेकर नगर का काम करते हैं, इस प्रकार उनके चरित्र देखकर राजा दशरथ मन में बड़े प्रसन्न होते हैं।

अब के बच्चों को पूछो (किसी भी उम्र के हों) सुबह उठकर अपने मां-बाप के पैर छूते हो, तो बोलेंगे—शरम आती है। मंदिर में, पेड़-पत्थर को

1. जा घट प्रेम न संचरै, ता घट जान मसान। कबीर सा।

2. जहां सुमति तहां सम्पत्ति नाना। गोस्वामी जी

दण्डवत-प्रणाम करेंगे। घर में मां-बाप को एक लोटा पानी नहीं पूछेंगे, लेकिन शिव जी के मंदिर में पानी चढ़ाने जायेंगे। शिक्षा और डिग्री में कोई कमी नहीं है मगर प्राणियों में भगवान नहीं दिखता।

इस मामले में साधु भी पीछे होते जा रहे हैं, आचरण घट रहा है और वक्तव्य तथा मान-बड़ाई बढ़ती जा रही है।

आज आदमी, आदमी की कीमत नहीं समझ पा रहा है। मां-बाप की अवहेलना होती जा रही है। इतना ही नहीं बच्चे भी मां-बाप के प्यार से वंचित होते जा रहे हैं क्योंकि आदर्श और संस्कृति भूलती जा रही है, संस्कार बिगड़ते जा रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, वृद्धाश्रम और अनाथालय। वृद्धाश्रम, अनाथालय का होना हमारी भारतीय संस्कृति की तौहिनी है, लेकिन करें क्या, वृद्धों को शरण तो यहीं मिल रही है।

बचपन में बच्चों को मां-बाप की अंगुली की सहारे की जरूरत होती है तो शिशु संरक्षण गृह में (creche) छोड़ देते हैं या फिर देख-भाल के लिए नौकर-चाकर रख देते हैं और बच्चे मां-बाप के प्यार से वंचित रह जाते हैं। बुढ़ापे में मां-बाप का सहारा बच्चे होते हैं तब बच्चे मां-बाप को वृद्धाश्रम में भेज देते हैं। बचपन में बच्चे मां-बाप के प्रेम के लिए तरसते हैं और बुढ़ापे में मां-बाप बच्चों के प्रेम के लिए। बचपन में बच्चे मां-बाप की अंगुली छूट जाने पर रोते हैं और बुढ़ापे में मां-बाप बच्चों से अलग होने पर रोते हैं। दोनों की आंखों में केवल आंसू पाया।

ऋषियों ने इन्हें प्रत्यक्ष भगवान कहा है—

मातृ देवो भव पितृदेवो भव।

आचार्य देवो भव अतिथि देवो भव॥

और आज इनकी उपेक्षा हो रही है। दिल को, प्रेम को, भावना को दौलत की तराजू से तौलने लगे हैं लोग। यह अच्छी तरह से जान लेना चाहिए कि खून से सींची हुई दीवारों पर मोहब्बत की इमारत कभी खड़ी नहीं होती। दिल को जीतने के लिए दौलत और ताकत कोई अहमियत नहीं रखते।

एक परिवार में पांच सदस्य थे—बाप, बेटा, बहू और दो बच्चे। बेटा पेशे से जज था, कोर्ट में उसका

जजपना था ही, घर को भी कोर्ट बना रखा था। घर के सदस्यों को भी मुजरिम की तरह दुबके और सिर झुकाकर रहना पड़ता था। बूढ़े से लेकर बच्चों तक को भय होता था बोलने में, क्योंकि वह किसी का सुनता नहीं था, केवल सुनाता था। एक दिन उसके साथ उसका मित्र भी आया। जैसे ही दोनों घर में प्रवेश किये, खेलते बच्चे छुप गये, पिता अपने कमरे में चले गये, पत्नी रसोई में चली गई। मित्र ने कहा—तुम्हारे घर वालों का यह कैसा व्यवहार है? जज ने कहा—मेरे सामने कोई बोल नहीं सकता है। मैं सबको दबाकर रखता हूँ।

मित्र ने डांटते हुए कहा—घर को नरक बना रखे हो और कहते हो मैं सबको दबाकर रखता हूँ। तब उसकी पत्नी ने हिम्मत बटोर कर कहा—भाई साहेब, अपने मित्र से कह दीजिए कि अपना जजपना कोर्ट में छोड़कर आये, यह इनका घर है, कोर्ट नहीं। यहां घर में पत्नी को पति का इंतजार होता है, बच्चों को पिता का और बूढ़े बाप को बेटा का, लेकिन ये तो हमेशा जज बनकर आते हैं और जज बनकर रहते हैं तथा हम लोगों से ऐसा व्यवहार करते हैं मानो हम सब मुजरिम हैं। तब मित्र ने कहा—आप अधूरे आदमी हैं। थोड़ा रूतबा छोड़कर दिल से सोचो—पत्नी के रहते पति नहीं बन पाये, पुत्र के रहते बाप नहीं बन पाये और बाप के रहते बेटा नहीं बन पाये। घर तो मोहब्बत से चलता है। अहंकार गांठने से नहीं।

आपा मेटि के प्रेम बढ़ावै—कबीर साहेब ने कहा है आपस में प्रेम तब बढ़ेगा जब अपने अहंकार को मारेंगे। अहंकार ही बाधा है प्रेम में। अहंकारी आदमी गलती होने पर भी झुकना नहीं जानता। इसलिए आपस में तकरार बनी रहती है। लोग सोचते हैं जितना बड़ा अहंकार उतना हम बढ़े आदमी, किन्तु बेवकूफी के सिवाय और कुछ भी नहीं है।

आज का परिवार है—पति-पत्नी और बच्चे। संयुक्त परिवार में लोग रहना नहीं चाहते जहां ज्यादा सुरक्षित रह सकते हैं, ज्यादा प्यार मिल सकता है, आशीर्वाद मिल सकता है, सुख-दुख के सहयोगी मिल सकते हैं। वहां बूढ़े मां-बाप होंगे, भाई होंगे, बहिनें

होंगी। पति-पत्नी के बीच कुछ गलती होगी तो घर के लोग सम्हाल लेते हैं लेकिन जहां केवल पति और पत्नी हों और कहीं बात बिगड़ गई, तू-तू-मैं-मैं हो गई तो स्थिति को सम्हालना कठिन हो जाता है और एक दूसरे के प्रति दिल टूट जाता है। इस टूटे दिल को जोड़ने के लिए ही बड़े-बूढ़ों का होना जरूरी है।

एक घर में पति-पत्नी दो ही थे। दोनों में मतभेद हो गया। तलाक लेने-देने का नम्बर आ गया। लेकिन लोग हंसेंगे, इसलिए दोनों ने समझौता कर लिया कि जिस दिन आंगन का पौधा सूख जायेगा, उस दिन दोनों के बीच तलाक हो जायेगा। पौधा सूखने न पाये इसलिए दोनों रोज पौधे को पानी दे देते हैं। समय बीता जा रहा है लेकिन आपस में कोई वार्तालाप नहीं, प्रेम नहीं, बस जी रहे हैं बिना प्राण के जैसे लोहार की धुकनी¹।

घर बसाना बेहद कठिन होता है फिर भी ऐसे बहुत से घर मिलेंगे जो सचमुच स्वर्ग से सुंदर हैं, जहां मां-बाप, भाई-बहन, जेठ-जेठानी और इन सबके बच्चे पूरा परिवार प्रेम के सूत्र में बंधा हुआ है। एक-दूसरे के सुख-दुख को अपनाते हैं। पूरा परिवार भक्ति-भावना से ओत-प्रोत है। ऐसा ही एक परिवार है जहां गुरुजी को संत मंडली सहित साल में दो बार बुलाते हैं। घर में संतों के पहुंचते ही सभी सदस्य खिल उठते हैं, अपने भाग्य को सराहते हैं।

उस परिवार का बड़ा लड़का एक दुर्घटना में 7-8 साल से बिस्तर पर पड़ा हुआ है। अपने से कुछ भी नहीं कर सकता, केवल देखता है, सारा क्रिया कलाप दूसरों के अधीन। उसकी सेवा सभी लोग कर रहे हैं, मानो वह छोटा बच्चा हो। छोटे बच्चों की सेवा में कोई संकोच नहीं करते हैं। आज भी उसकी बूढ़ी मां बच्चों की तरह उसे हंसाती है, लोगों का परिचय देती है। जब संत लोग पहुंच जाते हैं तो कहता है बेटा, संत जी आये हैं, हाथ जोड़ आशीर्वाद ले। यह है मां का प्यार। उस मां के प्रेम को समझ पाना आसान नहीं है। उसकी पत्नी तो सेवा में है ही, उसकी तो तपस्या है। उसकी

बहू जो जेठ मानती है, वह उसे भैया कहती है। वह भी बराबर उसका देखभाल करती है, सेवा में कोई कमी नहीं। यह होता है घर। यह वह घर है जो किसी मंदिर से कम नहीं है। ऐसे ही एक बहू अपने ससुर की सेवा कर रही है जो लकवा की बीमारी से ग्यारह साल से बिस्तर पर पड़ा है। जब वह घर से बाहर जाती है तो उसका ससुर रोने लगता है। हम पांच-छह संत गये थे देखने, घर में बेहद साफ-सफाई और सेवा। हर रोज शाम को डॉक्टर आता है।

ऐसे ही एक बहू अपनी सास की सेवा में लगी थी। उस घर में एक फकीर भिक्षा मांगने चला गया। उसकी सेवा देख फकीर बोले—बेटी, यह कौन है जो इतनी लगन से सेवा में तत्पर हो। बहू बड़े ही विनम्रता के साथ उत्तर देती है, महाराज जी, यह वह देवी है, जिसकी कोख में मेरा सुहाग पला है। यह होता है घर।

लोग जहां पर रहते हैं उस जगह को वे घर कहते हैं।

हम जिस घर में रहते हैं उसे प्यार का मंदिर कहते हैं।

संत लोग कहा करते हैं, जब मकान बनाओ तो एक पूजा स्थल भी बनाओ। जहां आप कुछ क्षण के लिए ही सही थोड़ी शांति के लिए अकेले में बैठ सकें, आत्मनिरीक्षण कर सकें, गुण-दोषों को देख सकें अहंकार का विसर्जन कर सकें। अगर आप ऐसा करते हैं, तो घर के सदस्यों के प्रति प्रेम बढ़ेगा, एक घर में सिर्फ एक देवालय।

मैं निवेदन करना चाहता हूं कि आप दिल को ही देवालय बना लीजिये। अगर ऐसा हुआ तो एक परिवार में पांच सदस्य हैं तो पांच देवालय हो जायेंगे, अगर दस सदस्य हैं तो दस देवालय हो जायेंगे, फिर वहां का चमत्कार देखिये, वहां न चिंता रहेगी, न शोक, न द्वेष। वहां तो प्रेम ही प्रेम होगा, गरीबी में भी अमीरी होगी, अभाव में भी स्वभाव अच्छा होगा। संतोष और मानसिक समृद्धि होगी, क्या आप ऐसा घर नहीं चाहते हैं?

हर इंसान की एक ख्वाइश होती है कि उसका एक घर हो, घर यानि स्वर्ग जैसा घर, जिसका नाम आप भिन्न-भिन्न रखते हैं। जहां आपस में प्रेम हो, एक दूसरे के प्रति आदर-सम्मान, सेवा-सहयोग, विश्वास-सहिष्णुता, समता-एकता का भाव हो वही तो घर है, नहीं तो श्मशान है जहां जीवित मुरदे रहते हैं। □

1 . जैसे लोहार की धुकनी, श्वास लेत बिन प्राण ॥

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

पूरा जीवन यात्रा है। ठहराव स्वरूप में है। वह सब समय है। शरीर लेटे, बैठे, चलते, घूमते, ट्रेन में, हवाई जहाज में, कार में, बिस्तर पर कहीं भी छूट जाये, कोई अंतर नहीं है। हर समय हमें अपने आनंद-भवन स्वरूपस्थिति में विद्यमान रहना चाहिए। बाहर कुछ मेरा है नहीं। देह मेरी नहीं है, तब अन्य वस्तु मेरी क्या हो सकती है? मेरा तो मैं हूँ। मैं में मैं हर क्षण निवास करूँ, यही जीवन की सार्थकता है। मन के भ्रम को हर क्षण काटते रहो। जो प्राणी, पदार्थ, परिस्थितियों में अहंता-ममता होती रहती है, उसको काटते रहो। सदैव असंग, कैवल्य और प्रशांत भाव में स्थित रहो।

यात्रा में अनेक चेहरे मिलते और खोते रहते हैं। सारा मिलना ही झूठ होकर रह जाता है। अनमिलता ही सच्ची है। जीव अकेला है। उसके साथ कुछ है ही नहीं। वह व्यर्थ ही चारों तरफ अपना संबंध बनाकर सब में उलझ रहा है। अंततः असंबंध ही सच रहेगा। हमें सब समय अपने अकेलेपन के अनुभव में जीना चाहिए। असंगता के प्रगाढ़ अनुभव की स्थिति में ही सारा भय समाप्त होगा। शरीर मेरा नहीं है, तब क्या मेरा है। मेरा तो मेरा आत्म-अस्तित्व ही है।

सांसारिक वस्तुओं से केवल सादे ढंग से निर्वाह लेना है, यह ध्यान में नहीं रहा; अपितु उनसे सुख पाने की भ्रांति हो गयी। इसीलिए हम बहिर्मुख हो गये और शिकायत करते हैं कि ध्यान में बैठते हैं, परंतु मन ठहरता नहीं। जो विषयों से, सांसारिक पदार्थों से सुख चाहेगा, उनकी संगत में आनंद की कल्पना करेगा वह अंतर्मुख नहीं हो सकता। बाहर का सुख चाहोगे तो भीतर का सुख नहीं मिलेगा। बाहर का सुख संबंध-

जनित है, उत्तेजक है, परतंत्र है, क्षणिक है, चंचलता उत्पन्न करने वाला और परिणाम में दुख उत्पन्न करने वाला है और अंततः छूट जाने वाला है, बंधन देने वाला है ही। भीतर का सुख कैवल्य का, असंग का है, स्थिर, स्वतंत्र और अविचल है। इस तथ्य को साधक समझे और सांसारिक सुख जो फांसी है उससे अपना गला छुड़ाये।

वासनाहीन मौन परम सुख है। तुम इस संसार की किस वस्तु को लेकर चिंता करते हो? देखते नहीं हो, सब बड़े-बड़े अभिमानी क्षण-पल में अपना-अपना माना हुआ ऐश्वर्य छोड़-छोड़ कर इस संसार से सदैव के लिए जा रहे हैं। सोचो, सौ वर्ष के बाद, दो सौ, पांच सौ, हजार और दो हजार वर्ष के बाद तुम्हारा क्या रहेगा? वस्तुतः तुम्हारा इस संसार में कभी कुछ नहीं रहा है और आगे भी कुछ नहीं रहेगा। तुम्हारा तो केवल तुम हो। तुम अपने आप को सम्हालो, अपने आप में पूर्ण संतुष्ट रहो। तुम्हारा अनंत ऐश्वर्य तुम्हारे भीतर है। वह है आत्मज्ञान, आत्मविश्वास, आत्मनियंत्रण, आत्मस्थिति, आत्माराम में रमण। इसी दशा में सब समय रमो।

संसार की प्रतीति मन-इंद्रियों से मुझ चेतन को हो रही है; अन्यथा संसार मेरे में है ही नहीं। मैं तो असंग हूँ। मेरे स्वरूप में संसार का भान नहीं है। ऐसा असंग चेतन अपने स्वरूप को भूलकर संसार-कीचड़ में पड़ा हानि-लाभ की कल्पना में जल रहा है। जब वह अपने को ठीक से समझे और अपने में लौटकर स्थित हो जाये, तो उसका सारा दुख समाप्त हो जाये।

मेरे चारों तरफ अनात्म, अनित्य और क्षणभंगुरता की बाढ़ है। मैं आत्मा हूँ, नित्य हूँ और निर्विकार हूँ। साधना है अनात्म से अपने को फिरा कर आत्मा में लीन रहना। पुरानी आदत है अनात्म की तरफ बहना।

और इसी आदत का परिणाम है निरंतर असंतोष की भट्टी में जलना। अनात्म स्थिर नहीं रह सकता। इसलिए उससे संतोष नहीं मिल सकता। अतएव अनात्म वस्तुओं में मन न लगाओ। मन आत्मा में लगाओ जो स्थिर है। संतोष सुख देगा। असंतोष मन का अविवेक है। भोजन मिले, वस्त्र मिले और रहने की जगह मिले; और मन में पूर्ण संतोष हो, फिर क्या चाहिए? बादशाह।

* * *

प्रखर वैराग्य और निरंतर के अभ्यास से मन ऐसा मंज जाता है कि ध्यान में बैठते ही मन संकल्प-शून्य होकर निर्विकल्प समाधि लग जाती है। यह जीवन का परम सौभाग्य है जो सद्गुरु कृपा, संतों की कृपा और अपने परिश्रम का फल होता है। आज-कल में शरीर नहीं रहेगा, तब हमारा कुछ भी लौकिक ऐश्वर्य नहीं रहेगा।

शरीर मिथ्या है। निर्विकल्प समाधि में डूबना चाहिए, इसी में अक्षय सुरक्षा है।

* * *

एक साधक ने पूछा कि आप कहते हैं कि रूक्ष स्वभाव का नहीं होना चाहिए, किंतु समय-समय पर रूखापन आ जाता है और कटु शब्द मुख से निकल जाता है। उसे बताया गया कि यह अपने मन के अहंकार से होता है। स्वभाव का सुधार करना ही तो साधना है। पूर्ण शुद्ध मन ही स्वरूपस्थिति में प्रवेश करता है। मन को निरंतर देखते रहने से और उसे शोधते रहने से वह धीरे-धीरे शुद्ध होता है। साधक का यही काम ही है कि वह अपने मन को पूर्ण शुद्ध कर ले।

* * *

किसी के लिए बुरा सोचना, बुरा बोलना और बुरा करना अपने पतन का रास्ता बनाना है। हमारे मन, वाणी और कर्मों के विकार हमें ही खाते हैं। दूसरे का हम नुकसान ही कुछ कर दें, तो उससे हमारा कोई

लाभ नहीं होता है; किंतु हानि अवश्य होती है। दूसरे के विषय में बुरा सोचने और बोलने से दूसरे का बुरा होता नहीं है। बुरा तो होता है बुरा सोचने, बुरा बोलने और बुरा करने वाले का। याद रखो, तुम्हारा संबंध किसी से नहीं है। तुम्हारा संबंध हर क्षण केवल तुम्हारे से है। अतएव तुम निरंतर अपने को सम्हालो। न बुरा सोचो, न बुरा बोलो और न बुरा करो।

* * *

मेरे पास मन एक है। उसको हरक्षण खुदा में रखूं कि जुदा में रखूं, यह मेरी सूझ पर निर्भर करता है। खुदा 'स्व' है और जुदा 'पर' है। खुदा स्वयंभू है और जुदा जड़-प्रकृति का कार्य-प्रवाह है। खुदा चेतन है और जुदा अचेतन जड़ है। खुदा प्रपंच रहित शुद्ध स्वस्वरूप है और जुदा विकारी तथा नश्वर है। खुदा में रहने से परम शांति है और जुदा में रहने से परम अशांति है। खुदा स्व-स्वरूप है जिससे मैं कभी अलग नहीं हो सकता और जुदा विकारी जगत है जो हर क्षण छूट रहा है। कौन समझदार होगा जो खुदा को छोड़कर जुदा में मन लगायेगा। आज की समाधि का यह मेरा अनुभव है।

* * *

कुछ न चाहने का अभ्यास हर क्षण करो। ध्यान में बैठो और संकल्प लो कि कुछ नहीं चाहना है। चाहना-हीन हो जाने पर अविचल ध्यान है। सदैव सावधान रहो, चाहना रूपी कली तोड़ते रहो तो दुखरूपी फूल-फल नहीं लगेंगे। जहां तक व्यवहार है वह उचित रूप में करते रहो। बिना चाह के भी व्यवहार होता है और वह सुंदर होता है। जो चाहना-हीन हो जाता है उसका व्यवहार खराब नहीं हो जाता है। वह व्यवहार करता है, परंतु उसके लिए उसका मन समतायुक्त होता है। वह सफलता और असफलता में समान बुद्धि रखता है। मूल लौकिक आवश्यकता है—भोजन, वस्त्र और आवास। उसकी पूर्ति हर हालत में होगी। इसके बाद तो केवल चाहना-हीन रहना अमृत उपलब्धि है।

अनजाना सफर

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

बीते कुछ वर्षों में राघव के पारिवारिक जीवन में ऐसी अप्रत्याशित घटनाएं घटीं कि उन्हें संभलने का जरा भी मौका नहीं मिला और उन्हें अंदेशा होने लगा कि जीवन के इस अनजाने सफर में कहीं वे अकेले तो नहीं रह जायेंगे। दो महीने के निरंतर इलाज के बावजूद सदमा में जी रही उनकी पत्नी सुगंधी की हालत तो नहीं सुधरी, उल्टा, उसे बुखार चढ़ आया। रोज की तरह डाक्टर शाम को दवा दे गये थे। किन्तु रात में बुखार का जोर इतना अधिक था कि सुगंधी बदहवासी की स्थिति में पहुंच गयी, वह सोते-सोते अचानक जाग उठती और बड़बड़ाने लगती। राघव ने फोन करके डाक्टर को बताया तो उन्होंने कहा, “लगता है, उनकी स्मृति लौट रही है। आप उनके माथे पर गीली पट्टी रखकर बदलते रहें। धीरज रखें, सबेरे तक बुखार काफी कम हो जायेगा।”

डाक्टर की बातों से उन्हें काफी राहत मिली थी। वे सुगंधी के करीब बैठकर उसके माथे पर गीली पट्टी बदलने लगे। पूस की ठंडी सूनी रात धीरे-धीरे सरकती जा रही थी। अभी घड़ी भर रात बीती थी कि नींद में डूबी सुगंधी एकाएक सुबकने लगी। राघव ने उसे झकझोर कर जगाया और पूछा, “क्या बात है सुगंधी, क्यों रो रही हो?”

कुछ देर की चुप्पी के बाद वह बोली थी, “सोनु के पापा, हमारा बेटा सोनु आया था। वह मेरी गोद में सिर रखकर बहुत रोया और मुझे भी रूला दिया। उसकी बहू भी हमारी बेटा की तरह मुझसे लिपट गयी थी। मैं दोनों को बाहों में भरकर खामोशी से दुलारने लगी। वर्षों बाद बेटा-बहू से मिली थी न, अपने को संभाल नहीं पायी और आंखें सावन-भादों की तरह बरसने लगीं। सोनु के पापा, उसे माफ कर दो, वह अपनी भूल पर बहुत पछता रहा है।”

राघव का मन करुणा से भर आया था। उसकी पत्नी बुखार में तड़प रही है, और वह कुछ भी नहीं कर सकता। उसने पट्टी हटाकर सुगंधी के माथे पर अपना हाथ रख दिया और बोला, “तुम ऐसा क्यों कहती हो सुगंधी? मैं पत्थर का नहीं हूँ। वह मेरा भी बेटा है। तुमने उसे नौ महीने अपनी कोख में रखा तो मैंने भी उसे पाला है। आयेगा तो क्या मैं उसे डंडे मारकर भगा दूंगा? नहीं सुगंधी, नहीं, पर यहां कोई नहीं आया है।”

राघव की बातें सुन कल्पना लोक में भटकती सुगंधी वर्तमान में लौट आयी। वह दृढ़ स्वर में बोली, “नहीं, अभी तो यहीं पर थे दोनों।”

राघव ने अधिक प्रतिरोध नहीं किया। वे अपनी पत्नी की मनोदशा से भली-भांति वाकिफ थे। कुछ देर बाद सुगंधी फिर नींद में डूब गयी थी। राघव अब भी उसके माथे पर गीली पट्टियां बदलते रहे। रात गहरी होती गयी तो उन्हें भी नींद आने लगी और वे कुर्सी पर सिर टिका कर सो गये। आधी रात के करीब सुगंधी जोर-जोर से हंसने लगी जिससे उनकी नींद खुल गयी। उन्होंने फिर सुगंधी को जगाया था, “सुगंधी, क्यों हंस रही हो?”

सुगंधी बोली, “हंसू नहीं तो क्या करूं? हमारे दोनों पोते बड़े शैतान हैं। सोनु के साथ जब उन्हें मालूम पड़ा कि मैं उनकी दादी हूँ तो दोनों गले में बाहें डालकर झूलने लगे। जब छोटा मेरी गोदी में बैठ गया तो बड़ा स्वयं बैठने के लिए उसे खींचने लगा। उनकी धमा चौकड़ी देख मैं आनंदविभोर हो गयी। कुछ देर के लिए तो मैं भी बच्ची बन गयी थी। कहते थे, ‘दादी, कहानी सुनाओ।’ मैंने कहा—‘पहले तुम लोग सुनाओ,’ तो बड़ा बोला, “अच्छा, मैं सुनाता हूँ। और उसने कहा, एक था राजा, एक थी रानी, दोनों मर गये, खत्म कहानी।” मैं उसकी चालाकी पर खूब हंसी। फिर छोटे की बारी आयी तो वह बोला, ‘दुनिया में सब असार है,

केवल ससुर का घर सार है, इसीलिए भगवान शंकर हिमालय में धुनी रमाये बैठे रहते हैं।” मैं उनकी कहानी सुनकर जोर-जोर से हंसने लगी फिर तुमने जगा दिया।”

राघव चिंतित हो उठे। उन्होंने सुगंधी के माथे को छुआ और फिर गीली पट्टी उसके माथे पर रखते हुए बोले, “झूठी आशा मत बांधो सुगंधी। यहां कोई नहीं आया है। तुम्हारी मनोवृत्ति तुम्हें छल रही है। तुम्हारी चाह मूर्त होकर तुम्हारे सामने खड़ी हो जाती है। और तुम कल्पना लोक में विचरण करती अपने बेटे-बहू एवं पोतों को देखती हो, उनसे मिलती और बातें करती हो। अपने को संभालो सुगंधी, अभी तो हमें बहुत दूर साथ चलना है।” राघव सुगंधी को ढाढ़स बंधाते थे लेकिन खुद भीतर ही भीतर टूट रहे थे।

बुखार में तपते सुगंधी के होठों में एक पल के लिए मुस्कान दौड़ गयी थी। उसने करवट बदल लिया और एकटक राघव को ताकने लगी। जीभ फिरा कर सूखे होठों को गीला किया और उसके हाथ पर अपना हाथ रखती हुई बोली, “सोनू के पापा, मैं जानती हूँ, तुम्हारा हृदय फौलाद का बना हुआ है। तुम्हारे भीतर बड़ी से बड़ी विपत्ति को भी सहने की शक्ति है, पर मैं तो मिट्टी की बनी हूँ। गम का एक हथौड़ा पड़ा और टूट गयी।” कहते-कहते वह चुप हो गयी थी।

कुछ अंतराल के बाद वह फिर बोलने लगी, “मुझे याद है जब सोनू की बेरूखी मैं सह नहीं पायी थी और तुम्हारे कंधे पर सिर रखकर रोने लगी तब तुमने एक वैरागी की तरह दृढ़ स्वर में कहा था, सुगंधी, बस इतने से ही घबरा गयी! जिंदगी फूलों का सेज नहीं है, काटों भरा रास्ता है। सुख और दुख के बीच से गुजरने वाला एक अनजाना सफर है यह। कहां से शुरू होता है, और कहां खत्म हो जाता है, कोई नहीं जानता। हमारा मिलना भी एक संयोग ही तो है। जैसे नदी की धारा में बहते हुए दो तिनके कुछ क्षण के लिए आपस में मिलते हैं। उस धारा के प्रवाह में इंसान का जीवन क्षणिक ही तो है। तुम्हारी बातों ने जादू-सा असर किया था मुझ पर। कुछ ही देर में मैं सहज और शांत हो गयी थी।

सच, छोटी-सी जिंदगी में तुमने मुझे इतना प्यार और साहस दिया कि मैं सारे गम भूल गयी।”

सुगंधी ने पुनः खामोशी ओढ़ ली। उसका गला सूख गया था और उसे बोलने में तकलीफ हो रही थी। उसने पानी मांगा और दो घूंट हलक के नीचे उतारने के बाद गिलास लौटा दिया। फिर सोचती हुई पुनः बोलने लगी, “पहली बार जब तुम अपने एक मित्र के साथ हमारे घर आये थे तब मैं आंगन लीप रही थी। फागुन का महीना था और आंगन में खड़ा आम का पेड़ बौरों से लदा हुआ था। बौरों की गंध सारे घर-आंगन में फैली हुई थी। तुम दोनों उसी पेड़ की छांव में बैठे बतियाते रहे। इसी बीच चाचा जी ने मुझे आवाज दी और मैं तुम्हारे सामने खड़ी हो गयी थी। तुमने सिर्फ मेरा नाम पूछा था। मैंने बताया तो हंसने लगे, “बहुत बढ़िया नाम है।” अपेक्षा के विपरीत प्रतिक्रिया मिली तो मैं शर्म से लाल हो गयी। इसके बाद चाचा जी ने मेरी अभागन होने की कहानी सुनायी थी।”

सुगंधी सचमुच जन्मजात अभागन थी। उसके जन्म के दूसरे दिन ही उसकी मां परलोकी हो गयी थी। उसके पिता सुगंधी की मां को बहुत चाहते थे। वे अपनी पत्नी की मौत का गम बर्दाश्त नहीं कर पाये या फिर संसार की असारता देख उनके भीतर वैराग्य जाग उठा, कहना मुश्किल है। छह महीने की जद्दोजहद के बाद एक रात वे घर-परिवार को छोड़कर चुपचाप कहीं चले गये। एक अबोध बच्ची का मोह भी उसे बांध नहीं पाया। लोगों ने उसके इस कृत्य की जी भर कर निंदा की। खूब लानत-मलानत भेजा कि यह सांसारिक जिम्मेदारी से भागना है। किन्तु विरक्त साधु-संतों की दृष्टि में यह मोह-नींद से जागना था। संसार के लोग अज्ञानवश प्राणी-पदार्थों की आसक्ति में डूबे जीवन-भर मोह-नींद में सोये रहते हैं और उग्र बीत जाती है। कोई बिरला ही जाग कर भागता है और अपना कल्याण करता है। चूंकि अंत में सबको छोड़ना है, वे जीते-जी संसार को त्याग कर कफनी ओढ़ लेते हैं। घर-परिवार वाले उसके लौटने की प्रतीक्षा करते थक गये थे। मगर उसे नहीं लौटना था, सो नहीं लौटा।

इस तरह सुगंधी अपने चाचा-चाची की गोद में पलकर बड़ी हुई। जब वह समझने लायक हुई तब उसे पता चला कि उसके जन्मदाता माता-पिता कोई और ही थे। विवाह के योग्य हुई तो लोग आते और उसके अभागन होने की बात सुनकर चुपचाप बिना कुछ कहे चले जाते। लेकिन राघव ने सुगंधी को अपना जीवन-साथी बनाने का निर्णय लिया था। उसके चाचा ने सुगंधी से उसका मंतव्य जानना चाहा तो वह शर्माकर भाग गयी थी।

कुछ महीने बाद उसकी शादी हो गयी और वह राघव के साथ अपने ससुराल आ गयी। मगर जिस घर-परिवार में जन्म लिया, जहां छोटी से बड़ी हुई उसे क्या इतनी आसानी से छोड़ा जा सकता है? घर से निकलते वक्त चाचा-चाची, भैया-भाभी सबके प्यार और आशीष का कभी न खत्म होने वाला खजाना मिला था। आंगन में आयी तो कोठे में बंधी श्यामा हुंकार उठी जैसे सब कुछ जानती-समझती हो। सुगंधी स्वयं को रोक नहीं पायी थी। वह श्यामा के गले से लिपटकर रो पड़ी, “श्यामा, मैं जा रही हूं। दाना-पानी में देरी हो जाये तो चाची को तंग मत करना।” पता नहीं वह मूक पशु सुगंधी की बात समझती थी या नहीं? लेकिन वह गमगीन दम साधे खामोश खड़ी थी और उसकी आंखों से आंसू बहते थे।

सुगंधी जब पांच बरस की थी, तब श्यामा जन्मी थी। फिर तो वह उसकी प्यारी सहेली बन गयी। जब तक सुगंधी खूंटें से बांध नहीं देती श्यामा दिन-भर उसके आगे-पीछे डोलती रहती। दाना-पानी में थोड़ी देर हो जाती तो बार-बार हुंकार भरती और सुगंधी बनावटी गुस्सा दिखाती कहती, “ला रही हूं माता.. थोड़ी-सी देर हुई नहीं कि हड़बड़ाने लगती है।” फिर सब काम छोड़कर उसे दाना-पानी देती। और आज जब अलग होने की बारी आयी तो दोनों की आंखों में आंसू थे।

जब सुगंधी ससुराल पहुंची थी, धरती हरियाली की चादर ओढ़े खुशी से झूम रही थी। सावन का महीना, खेत के मेड़ों पर सांवा फूल चुके थे और आंगन में

सदा सोहागी के फूल खिले हुए थे। आसमान में उमड़ते-धुमड़ते कारे कजरारे बादल पहली ही रात झूम कर बरसे थे। सबेरे सास-ससुर को चाय देने गयी तो ससुर बोले थे, “हमारी बहू सुलक्षणी है, उसके घर में पांव रखते ही जम कर बारिस हुई।” इतना सुनते ही सुगंधी का मन गद्गद हो गया था। फिर कुछ महीने बाद संयोग से राघव को मास्टरी की नौकरी भी मिल गयी और कम पढ़ी-लिखी सुगंधी मास्टर की पत्नी होने के नाते मास्टरीन कहलाने लगी। सुगंधी मायके से ससुराल जरूर आ गयी किन्तु यहां उसे इतनी आत्मीयता मिली कि वह मायके को भूल गयी।

यह घर उसके लिए स्वर्ग था। उसने जितना चाहा उससे ज्यादा मिला। या फिर उसकी आशा-आकांक्षा ही कम थी। वक्त के साथ उसकी खुशियों में इजाफा होता चला गया। सोनू के जन्म के बाद सुगंधी के पैर सीधे न पड़ते थे। उसके बुढ़ापे का सहारा बेटा जो पैदा हुआ था। अब दोनों पति-पत्नी सोनू के साथ स्वयं भी बच्चे बन जाते। खुद ही कहते और खुद ही सुनते। राघव दिन भर काम के बाद शाम को घर लौटते तो सोनू का हंसता-मुस्कराता चेहरा देखकर अपनी सारी थकान भूल जाते। सुगंधी उन्हें हंसते-खेलते देख अपनी खुशनसीबी पर मंद-मंद मुस्कराती राघव को चाय-पानी देती। इसी तरह दिन गुजरते रहे और पांच साल के लंबे अंतराल के बाद उनकी बेटा रीता पैदा हुई थी और एक बार फिर उनका घर खुशियों के उजाले से जगमगा उठा था।

निःसंदेह ये उनके जीवन के बहुत सुखद दिन थे। समय के साथ बच्चे पाठशाला जाने लगे। सोनू पढ़ाई में बहुत तेज था। वह हमेशा उनकी उम्मीदों से अधिक आगे रहा। हाईस्कूल के बाद आर्थिक तंगी के बावजूद उन्होंने उच्च शिक्षा के लिए सोनू को मुम्बई भेज दिया। उनकी बेटा रीता भी पढ़ाई में होशियार थी। जब लोग उनके बच्चों की प्रतिभा की प्रशंसा करते तो उनका सीना गर्व से फूल जाता। पढ़ाई के बाद सोनू को बहुत आकर्षक वेतन के साथ वहीं एक कंपनी में नौकरी मिल गयी। सोनू की यह सफलता उनके लिए ढेरों

खुशियां लेकर आयी थी। धन के साथ समाज में उनकी इज्जत और रूतबा भी बढ़ना तय था। अब दोनों उसकी शादी की योजना बनाने लगे। शादी होगी तो बहू आयेगी, फिर बच्चे होंगे और वे उनके साथ हंसते खेलते एक बार फिर अपने बचपन को जीयेंगे। उनके सामने अपने सुखद बुढ़ापे की एक सुन्दर तसवीर थी। रीता भी उनकी अपेक्षा के अनुरूप आगे बढ़ रही थी। पढ़ाई पूरी हुई और पड़ोसी गांव के स्कूल में शिक्षिका बन गयी। वह रोज स्कूटी से स्कूल जाती और शाम तक घर लौट आती। किन्तु समय सदा एक-सा नहीं रहता। सोनू दौलत कमाने में इस कदर डूबा कि उसके लिए घर-परिवार गौण हो गया। धीरे-धीरे उसका संपर्क घर से टूटता चला गया। कभी-कभार घर आया भी तो मेहमान की तरह दो दिन रहकर वापस लौट गया।

दोनों पति-पत्नी अपने बेटे की उपलब्धि पर प्रसन्न थे तो उसके स्वभाव में आये बदलाव से अर्चभित और दुखी भी थे। क्योंकि सोनू के पास उनके लिए वक्त नहीं था। नियति का खेल अत्यंत विचित्र होता है। इंसान जिस उपलब्धि पर इतराता है, वही उपलब्धि कई बार उसके दुखों का कारण बन जाती है। कुछ साल बाद यही स्थिति राघव और सुगंधी के जीवन में भी आयी थी। ज्यों-ज्यों वक्त बीतता गया सोनू उनसे दूर होता चला गया और एक दिन ऐसा भी आया जब वे सोनू का निर्णय सुनकर हक्के-बक्के रह गये।

दोपहरी ढल चुकी थी और दोनों सोनू के विषय में ही बातें करते मजे से चाय की चुस्की ले रहे थे ठीक उसी समय उसका फोन आया था, “पापा..।” सोनू की आवाज कांप रही थी। “हां बेटा, बोलो क्या बात है?” राघव असहज हो गये थे। “पापा, कैसे कहूं, कुछ समझ नहीं आ रहा है?” उसकी झिझक बता रही थी, कहीं न कहीं कुछ ठीक नहीं है।

“बोलो बेटा, बोलो...।” राघव ने उसे आश्वस्त किया था।

“पापा मुझे माफ कर दो, मैंने यहां एक लड़की से विवाह कर लिया है। उसकी शर्त थी कि मैं फिर कभी

आप लोगों के पास गांव नहीं लौटूंगा। विवश होकर मैंने हामी भर दी।” इसके बाद उसने फोन काट दिया था?

उनके ऊपर जैसे वज्रपात हो गया। वे कुछ क्षण के लिए फालिज मारे व्यक्ति-सा निढाल हो गये थे। सुगंधी को बताया तो वह बहुत देर तक सुबक-सुबक कर रोती रही। उन्हें समझ नहीं आता था कि सोनू ने ऐसा क्यों किया? कहां चूक हो गयी उनसे? कई दिनों तक उनके अंतस में संघर्ष चलता रहा। कितने विश्वास से मां-बाप सारे कष्ट सहकर बच्चों को पालते-पोसते हैं कि बड़े होकर वे बुढ़ापा में उनका सहारा बनेंगे? मगर अपने स्वार्थ के आगे उन्हें मां-बाप का दुख दिखाई नहीं देता। इस तरह बहुत चाहने पर भी वे कुछ नहीं कर पाये थे और सोनू सदा के लिए उनसे दूर चला गया था।

कहते हैं विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। अभी सोनू का दिया जख्म भर नहीं पाया था कि फिर एक हृदयविदारक घटना घट गयी। रीता एक शाम छुट्टी के बाद स्कूटी से घर लौट रही थी कि अचानक पीछे से आ रही एक तेज रफ्तार ट्रक ने उसे जबर्दस्त टक्कर मार दिया। रीता स्कूटी सहित दूर जा गिरी और सिर पर गंभीर चोट लगने से वहीं दम तोड़ दिया। समाचार सुनते ही सुगंधी को ऐसा सदमा लगा कि वह बेहोश होकर गिर पड़ी। और राघव बच्चों की तरह बिलख-बिलख कर रोने लगे।

सूचना देने वाले व्यक्ति ने ही डाक्टर बुलाया तब बहुत देर बाद सुगंधी की बेहोशी खत्म हुई थी किन्तु वह सदमे से बाहर नहीं निकल सकी। किसी तरह क्रिया-कर्म निबटाया गया। सगे संबंधी तथा बिरादरी के लोग उन्हें सांत्वना देकर चले गये। अब राघव और सुगंधी के सामने एक विराट सूनापन एक प्रश्नचिन्ह की तरह खड़ा हो गया था। इसके अतिरिक्त उनके चारों ओर सिर्फ नैराश्यजन्य उदासी पसरी हुई थी। राघव की लाख कोशिशों के बावजूद सुगंधी उदासी से उबर नहीं पायी थी। न कुछ बोलती न बताती। बिस्तर पर खामोश पड़ी बस छत की ओर निहारती रहती। कभी-कभी उसकी आंखें डबडबा उठतीं और चुपचाप आंसू

बहने लगते। इसी तरह दो महीने बीत गये थे।

डाक्टर नियमित रूप से रोज सुबह-शाम आकर दवाई दे जाते। उन्हें पूरी उम्मीद थी कि सुगंधी शीघ्र ही सामान्य हो जावेगी। पर एक दिन उन्हें महसूस हुआ कि सुगंधी की जीने की इच्छा ही खत्म हो गयी है तो वे परेशान हो उठे।

फिर उन्होंने दवाई बदली तो सुगंधी को जोरों का बुखार हो गया और उसकी स्मृति लौटती नजर आयी। वह अर्ध चैतन्य दशा में सारी रात अतीत की यादों में करवटें बदलती रही। कभी हंसती तो कभी रोने लगती। राघव झकझोर कर जगाते तो वह वर्तमान में लौट आती और कुछ समय बाद फिर यादों के भंवर में डूबने-उतराने लगती। अंतिम पहर में उसका बुखार उतर गया फिर वह गहरी नींद में समा गयी। जब जागी तब सबेरा हो चुका था। राघव उसके जागने की प्रतिक्षा में पास ही बैठे हुए थे। वे सुगंधी के माथे पर हाथ रखते हुए बोले “सुगंधी, चाय पियोगी?”

जवाब में वह राघव का हाथ पकड़कर रोने लगी, “सोनू के पापा, हमारी खुशियों को किसकी नजर लग गयी, मुझसे बच्चों का गम सहा नहीं जाता। मैं जीना नहीं चाहती। तुमने मुझे बहुत प्यार दिया। दोबारा मानव तन मिला तो ईश्वर से तुम्हारा ही साथ मांगूंगी, किन्तु लगता है, मेरी मौत निकट है। अभी-अभी मैंने एक भयानक सपना देखा, दोपहर का समय था। मैं बीमार असक्त, असहाय घर के आंगन में पड़ी थी। मेरे हाथ-पैरों में हिलाने-डुलाने की भी शक्ति नहीं थी। विकल, सहायता के लिए तुम्हें बार-बार पुकारती रही, लेकिन तुम न जाने कहां चले गये थे। मरने से पहले मैं तुम्हें एक बार देखना चाहती थी। तभी छत की मुंडेर पर बैठा कौआ नीचे उतर आया, फिर और कई कौएं भी आ गये और मेरे शरीर को नोचने लगे। तुम्हें न पाकर मैं रोती-कलपती कौओं से ही बिनती करने लगी—कागा सब तन खाइयो, चुनि-चुनि खाइयो मांस। दो नैना मत खाइयो, मोहे पिया देखन की आस। और इसी के साथ मेरी नींद टूट गयी।”

थोड़ी देर के लिए राघव भी भावुक हो गये थे लेकिन उन्होंने अपने को संभाल लिया था, “सुगंधी, तुम इतनी कमजोर तो नहीं थी। फिर यह क्या हो गया है तुम्हें? इस जन्म में तुम्हारे साथ हूं तब छोड़कर जाना चाहती हो। वर्तमान में मिले अवसर को तुकराकर अगले जन्म में साथ रहने की कामना कितनी अजीब है? कैसी बावरी हो गयी हो तुम? बच्चे बीच रास्ते में आये और चले गये इसके लिए इतना संताप क्यों? सुगंधी, इस दुनिया में हमारी तरह कई दंपती हैं जिनके बच्चे उन्हें छोड़ गये या उनकी संतान ही नहीं हुई, फिर भी वे सुखपूर्वक जीवन जी रहे हैं। हम भी उनके बगैर अनासक्त सुखी जीवन जी सकते हैं। यदि हम यहां से दुखी रोते हुए गये तो यह हमारी हार है सुगंधी। क्या तुम यहां से हार कर जाना चाहती हो?”

राघव की बातों से सुगंधी का मन-मस्तिष्क एकबारगी झंकृत हो उठा। उसने तत्क्षण दृढ़ स्वर में कहा, “नहीं, मैं हारकर नहीं जाऊंगी। मैं जीना चाहती हूं सोनू के पापा, लाओ चाय दो।” उसका जवाब सुन राघव का मन प्रसन्नता से खिल उठा। वे चाय बनाते हुए सोच रहे थे, सचमुच इंसान का जीवन एक अनजान सफर है। यहां कब क्या हो जायेगा कोई नहीं जानता, फिर भी वह अनवरत चलता रहता है, जब तक मौत सामने आकर खड़ी नहीं हो जाती।

नर तैं क्या पुराण पढ़ि कीन्हा।

अनपायनी भक्ति नहिं उपजी, भूखै दान न दीन्हा ॥
पूज शिला चन्दन घसि लावै, बक ज्यों ध्यान लगावै ॥
अन्तरघट के राम न चीन्है, थोथे घण्ट बजावै ॥
काम न बिसरा क्रोध न बिसरा, लोभ न छूटा देवा ॥
पर निन्दा मुख ते नहिं छूटी, विफल भई सब सेवा ॥
बाट पारि घर मूस बिरानो, पेट भरे अपराधी ॥
जिहि परलोक जाय अपकीरति, सोई अविद्या साथी ॥
हिंसा तो मन ते नहिं छूटी, जीव दया नहिं पाली ॥
परमानन्द साधु संगति मिलि, कथा पुनीत न चाली ॥
कहहिं कबीर सन्तन की महिमा, परम पुनीत सुहाई ॥
आपा मेटि आपको चीन्हो, तबै परम पद पाई ॥

बीजक चिंतन

जग की उलटी रीति

शब्द-95

को अस करे नगर कोटवलिया, माँसु फैलाय गिद्ध रखवरिया॥
मूस भौ नाव मंजारि कँड़िहरिया, सोवै दादुर सर्प पहरिया॥
बैल बियाय गाय भइ बंझा, बछरू दुहिये तिन-तिन संझा॥
नित उठि सिंह सियार सों जूझै, कबिरा का पद जन बिरला बूझै॥

शब्दार्थ—कोटवलिया= कोतवाल का काम, रक्षा।
माँसु= भोग। गिद्ध=मन-इन्द्रियां। मूस= जीव। मंजारि
= बिल्ली, माया। कँड़िहरिया=कड़िहार का काम,
नावका खेने का काम, उद्धारक। दादुर=मेढक, जीव।
सर्प=अहंकार। पहरिया=पहरा देने का काम। बैल=
अविवेक। गाय=सद्बुद्धि। बंझा=बंध्या। बछरू=काम,
क्रोधादि। तिन तिन संझा=प्रातः, मध्याह्न तथा सायं,
सब समय। सिंह=जीव। सियार=गलत आदतें।
कबिरा=कबीर साहेब, जीव। पद=पद्य, शब्द, कविता,
स्वरूप।

रूपक—ऐसे नगर की रक्षा कौन करे जहां मांस
फैलाकर गिद्ध उसके रक्षक बनाये गये हों, चूहे
नावकायात्री बन गये हों तथा बिल्लियां उन्हें खेने
वालीं। मेढक सो रहे हों और सांप उनकी रक्षा में पहरा
देते हों, बैल प्रजनन करते हों और गायें बंध्या हो गयीं
हों तथा बछड़े को तीन-तीन बार दुहा जा रहा हो, और
रोज सिंह उठकर सियार से लड़कर परास्त हो रहा हो,
सच है कबीर साहेब के गाये पद कोई बिरला बूझेगा।

भावार्थ—ऐसे लोगों का उद्धार कौन कर पायेगा
जो अपने मन-इन्द्रियों के आस-पास भोग वस्तुओं को
फैलाकर संयमशील बना रहना चाहता है ॥ 1 ॥ बिल्ली
चूहे का बेड़ा कब पार कर सकती है, अर्थात् माया द्वारा
कब जीव का उद्धार हो सकता है! क्या सांप की
पहरेदारी में मेढक सो सकते हैं! अर्थात् क्या अहंकार
के संरक्षण में जीव का कल्याण संभव है? ॥ 2 ॥ बैल
बछड़े जनते हैं तथा गाय बंध्या हो गयी है, अर्थात्
अविवेक अपनी कामादि सृष्टि बढ़ा रहा है, किन्तु
सद्बुद्धि बांझ बन गयी है। बछड़े प्रातः, मध्याह्न और

संध्या तीनों काल में दुहे जा रहे हैं। अर्थात् अविवेक से
पैदा हुए काम, क्रोध, लोभ, मोहादि का ही सब समय
रस-पान किया जा रहा है ॥ 3 ॥ नित्य सिंह उठकर सियार
से लड़कर परास्त होता है अर्थात् रोज जीव सुबह से ही
उठकर अपनी गलत आदतों से युद्ध करके उनसे परास्त
होता है। जीव के निर्मल स्वरूप को कोई बिरला
समझता है ॥ 4 ॥

व्याख्या—कबीर साहेब व्यंग्य लेखकों के
आचार्य हैं। उनकी जितनी उलटवांसियां हैं वे प्रायः
व्यंग्य में कही गयी हैं। इस पद में भी मनुष्यों के
विपरीत आचरण पर करारा व्यंग्य है। वे कहते हैं “को
अस करे नगर कोटवलिया।” नगर कहते हैं शहर को।
हर जिले के मुख्य शहर के पुलिस अफसर को
कोतवाल कहा जाता है जिसके अधीन वहां के सभी
थानेदार होते हैं। इस प्रकार कोतवाल पूरे नगर का
रक्षक होता है। परन्तु ऐसे नगर की रक्षा कौन कर
पायेगा जहां मांस फैलाकर गिद्ध रखवाले बनाये गये
हों। मांस मानो विषय-भोग हैं तथा गिद्ध मन-इन्द्रियां
हैं। जो व्यक्ति अपने चारों तरफ विषय-भोगों को
फैलाकर उनमें रहता हो और साथ-साथ यह भी चाहता
हो कि हम संयम से रहें, यह कैसे हो सकता है! जैसे
मांस को देखकर गिद्ध उस पर टूट पड़ता है, वैसे भोगों
को सम्मुख पाकर मनुष्य के मन-इन्द्रिय उसके लिए
विचलित हो जाते हैं। जो जीवन में संयम, ब्रह्मचर्य एवं
शांति चाहे वह भोग-विषयों से दूर रहे। यहां कोतवाल
मानो गुरु है। गुरु उस व्यक्ति की रक्षा नहीं कर पायेगा
जो भोग-विषयों के कुसंग में अपने आप को बनाये
रखना चाहता है।

“मूस भौ नाव मंजारि कँड़िहरिया” नावका को
केवट खेता है। मूस नावका-यात्री बन गया और
बिल्ली उसे खेने लगी। यह माया के अधीन जीवों पर
करारा व्यंग्य है। यदि चूहा बिल्ली को अपना उद्धारक
मानता है तो उसकी बुद्धि की बलिहारी है। चूहा तो
बिल्ली का आहार है। यदि आदमी संसार के माया-
मोह द्वारा अपना कल्याण समझता है तो उसका घोर
पतन रखा-रखाया है। माया-मोह तो बिल्ली है, यदि
मनुष्य उससे सम्बन्ध जोड़ेगा तो वह उसके सामने चूहा
बन जायेगा और उसे माया धर-दबोचेगी।

“सोवै दादुर सर्प पहरिया” मेढक सांप को अपना पहरेदार बनाकर सोना चाहता है। मनुष्य अहंकार को अपना रक्षक समझता है। वह अहंकार के बल पर सोता है। परन्तु अहंकार-सर्प ही मनुष्य को रात-दिन डंसता है। जिस संसार में जीव का एक तृण भी अपना नहीं है वहां सब कुछ अपना मानने का अज्ञान ही तो अहंकार है और इसी के फल में सारे दुख हैं।

“बैल बियाय गाय भई बंझा” अविवेक बैल है; काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, भय, चिन्ता, शोक आदि उसकी संतानें हैं जिनका वह नित्य प्रजनन करता रहता है। अविवेक की सृष्टि और क्या हो सकती है? अविवेक-बैल से जो कुछ पैदा होगा वह सब मनुष्य के लिए दुखदायी ही होगा। अविवेक के विरोधी पक्ष में सदबुद्धि रूपी गाय है, वह बंध्या हो गयी है। मलिन हृदय में सदबुद्धि बंध्या हो ही जाती है। यदि सदबुद्धि रूपी गाय प्रजनन करती, तो उसकी शील, क्षमा, दया, धैर्य, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, संतोष आदि संतानें होतीं। परन्तु वह तो बंध्या हो गयी है, अतः जीवन में इन सद्गुणों के होने का प्रसंग ही नहीं है। संसार में ज्यादातर यही देखा जाता है कि बैल ही प्रजनन कर रहे हैं और गाय बंध्या हो रही है। अविवेक की ही सृष्टि सर्वत्र है, सदबुद्धि बांझ बनी पड़ी है। जैसे भागवत के अनुसार भक्ति बूढ़ी हो गयी थी, वैसे सारे संसार में सदबुद्धि प्रायः बंध्या हो गयी है।

“बछरू दुहिये तिन तिन संझा” अविवेक-बैल से पैदा हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि बछड़े सब समय दुहे जा रहे हैं। जैसे गाय-भैंस दुहकर उनका दूध पीया जाता है, वैसे यहां अविवेक-बैल से पैदा हुए कामादि बछड़े ही मानो हर समय हर जगह दुहे जा रहे हैं और उन्हीं का दूध, उन्हीं का रस पीया जा रहा है। रात-दिन में चार संध्याएं होती हैं। दो समयों के मेल को संध्या कहते हैं। रात और दिन का मेल प्रातः पहली संध्या है, दिन के दोनों समयों का मेल मध्याह्न दूसरी संध्या है, दिन और रात का मेल गोधूलि तीसरी संध्या है तथा रात के दोनों समयों का मेल आधी रात चौथी संध्या है। रात में लोग सोते हैं इसलिए आधी रात वाली संध्या को सब छोड़ देते हैं, प्रातः, मध्याह्न और सायं इन तीन संध्याओं को ही मनुष्य उपयोग में लाता है,

इसलिए इन्हीं तीनों में संध्योपासना करने का विधान बना। ‘तिन तिन संध्या’ का यहां लाक्षणिक अर्थ है, सब समय। जीव हर समय सदबुद्धि से दूर पड़ा अविवेक की सृष्टि का रस लेता है। वह सब समय विषय-वासनाओं तथा नाना विकारों में डूबा रहता है।

“नित उटि सिंह सियार सों जूझै” सिंह रोज सबेरे उठकर सियार से युद्ध करता है और उससे मारा जाता है। कैसा आश्चर्यमय है इस नगर का खेल! सिंह मनुष्य है। वह रोज सुबह उठकर अपनी गलत आदतरूपी सियारों से भिड़ना शुरू करता है। द्वेष, कुढ़न, ईर्ष्या, मोह, काम, असत्य-भाषण, परनिंदा, चुगली, गाली, कलह, स्वार्थ, धोखाधड़ी, वंचना, इतना ही नहीं, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, गांजा-भांग, शराब, नामालूम कितनी गंदी आदतें मनुष्यों ने बना रखी हैं। सुबह होते ही, नींद खुलते ही, जीव इन्हीं सबसे भिड़ जाता है। सद्गुरु मनुष्य को याद दिलाते हैं कि तुम सिंह हो, परन्तु सियार से भिड़कर रोज परास्त हो रहे हो। जब लोगों से कहा जाता है कि तम्बाकू-बीड़ी तो तुच्छ आदतें हैं, इन्हें छोड़ दो, तब लोग कहते हैं कि महाराज! अन्न दो-चार दिन न दो तो चल जायेगा, परन्तु बीड़ी-तम्बाकू आदि के बिना नहीं चलेगा। मनुष्य सिंह के समान बलवान होकर भी कैसी कायरता की बात करता है! इस प्रकार मनुष्य-सिंह अपनी बनायी मलिन आदतरूपी सियारों से हर समय परास्त हो रहा है।

सद्गुरु कहते हैं कि ऐसे लोगों की रक्षा कौन कर पायेगा? “को अस करे नगर कोटवलिया” ऐसे संसार में कौन इनके कल्याण करने का बीड़ा उठा पायेगा! जो लोग अपने जीवन की सारी प्रक्रिया को ही उलट दिये हैं, उनका बेड़ा पार कैसे होगा!

“कबिरा का पद जन बिरला बूझै” इसका सरल अर्थ है कि कबीर साहेब कहते हैं कि मेरे इन-जैसे उलटवांसी के पद कोई बिरला ही बूझेगा। इसका तात्त्विक अर्थ है कि जीव का शुद्ध स्वरूप कोई बिरला समझता है। कबिरा से अर्थ जीव है तथा ‘पद’ का अर्थ स्वरूप है। जो जीव का स्वरूप समझ लेता है, जो जान लेता है कि मेरा स्वरूप शुद्ध चेतन है, वह अपने आप को सारे विकारों से निकाल लेता है।

सच्चा धन क्या है?

लेखक—रामदास

सच्चा धन क्या है? जिसे प्राप्तकर हम पूर्ण संतुष्ट हो जायें वही सच्चा धन है। जैसे शरीर की भूख-प्यास अन्न-पानी से मिटती है वैसे आत्मा की भूख शील, सन्तोष, आत्मस्थिति आदि मन के पवित्र सद्भावों से मिटती है। भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, रोगी को औषधि, ठंड से परेशान व्यक्ति को कपड़े और धूप-वर्षा से परेशान व्यक्ति को मकान मिल जाना धन मिलने जैसा है। किन्तु इससे सम्पूर्ण दुखों का अन्त नहीं होता। भौतिक उपलब्धियां तो अनेक लोगों के पास बेहिसाब हैं। जीवन गुजर की मूल आवश्यकताओं का निदान हर इन्सान किसी न किसी प्रकार कर लेता है, फिर भी मन में तृप्ति का अनुभव क्यों नहीं होता। गुजर-बसर के मामले में पशु-पक्षियों से मनुष्यों की तुलना की जाये तो इन प्राणियों का भी गुजर-बसर अच्छा होता है। मानवेतर प्राणियों के पास कुछ भी न होने के बाद भी वे अहं-हीनत्व की भावना से ग्रस्त नहीं होते। लेकिन मनुष्य सर्वश्रेष्ठ, बुद्धिमान और अनेक प्रकार की चीजों से सम्पन्न होकर भी अहं-हीनत्व की भावना के साथ असंतोष-अतृप्ति का अनुभव करता है। यह असंतोष ही मनुष्य का सबसे बड़ा दुख है। जिस धन को प्रयत्नपूर्वक कमाया गया, यदि वह आत्मसंतोष न दे सके तो सच्चा धन कहां हुआ।

मानव सभ्यता की शुरुआत से ही मनुष्य धन के महत्त्व को समझने लगा है, लेकिन सच्चा धन क्या है यह न जानने के कारण भौतिकता में बढ़ा-चढ़ा होने के बाद भी मनुष्य दुखी है। हम जिसे धन कहते हैं वे हैं—हीरा, सोना, चांदी, मकान, दुकान, रुपये, पैसे, जमीन आदि, लेकिन यह सब सच्चा धन नहीं है। इनका विकास हमारा विकास नहीं है। यह तो चीजों का विकास है। मात्र चीजों के विकास से हमारी भूख-प्यास, निवास आदि आवश्यकताओं का समाधान होगा, लेकिन इनसे आत्म-संतोष तो नहीं मिलेगा। जेट विमान से उड़ने पर भी हम आत्म-शान्ति तक नहीं पहुंच पाये। बड़े नोटों से उसे खरीद नहीं सके। बड़े पद

पर प्रतिष्ठित होकर भी आत्मशान्ति पर अपना अधिकार न जमा सके। वातानुकूलित शीतल भवन में रहने के बावजूद भी जलते रहे।

व्यवहार में यह कहना पड़ता है कि भौतिक चीजें धन हैं और इनका मालिक धनी व्यक्ति है। परंतु यह सच्चा धन नहीं है।

एक बार गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी के पास कुछ भक्त दर्शनार्थ आये। उन लोगों के साथ एक धनी व्यक्ति भी था। भक्तों ने उनका परिचय देते हुए कहा— गुरुदेव! ये हमारे बाजार के सेठ हैं।

गुरुदेव जी ने कहा—हां, ये सेठ हैं तो बड़े कबाड़ी हैं।

गुरुदेव की बात सुनकर वे धनी व्यक्ति विस्फारित नेत्रों से गुरुदेव जी को देखने लगे। गुरुदेव जी ने उनको समझाया—मेरी बातों से आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए। मैं सच कहता हूं। यदि आप सेठ हैं तो इसका मतलब है आपके पास पैसे के नाम पर—कागज के नोटों और सिक्कों का कबाड़, गाड़ी के नाम पर—लोहा, टीन, रबर आदि का कबाड़, मकान के नाम पर—ईंट, सीमेंट, लोहा, गिट्टी का कबाड़, फर्नीचर, कपड़े आदि का कबाड़ ज्यादा है। कुल मिलाकर आप बड़े कबाड़ी हैं। अन्य लोगों के पास धन कम है तो वे छोटे कबाड़ी हैं। जब विस्तार से गुरुदेव जी ने उनको समझाया तो वे सहज होकर हंसने लगे। उन्होंने कहा—महाराज, आप सच कहते हैं।

अंततः संसार के माने हुए सारे लाभ, सारी उपलब्धियों में हम अपने आप को छलते हैं।

अरब देश की घटना है रेतीले मैदान में एक अमीर ऊंट पर बैठा जा रहा था। उसका नौकर पीछे बैठा था। उसके हाथ में छाता था ताकि अमीर को धूप न लगे। दूसरे हाथ में पंखी थी ताकि अमीर को पसीना न आये। दोनों मजे से जा रहे थे। कुछ दूर गये होंगे कि उनकी दृष्टि पैदल चल रहे एक फ़कीर पर पड़ी। फ़कीर

अकेले थे। चिलचिलाती धूप में वे चले जा रहे थे। उनकी चाल में मस्ती थी। अमीर ने जब फकीर को देखा तो उसका अहं जाग उठा। वह बोला—अरे फकीर, इतनी धूप में ऐसे ही घूम रहा है, बिना मौत मर जायेगा।

फकीर भी मस्त थे। वे बोले—फकीर नहीं मरेगा। मरेगा तो अमीर मरेगा। ऊंट आगे बढ़ गया। फकीर मस्ती में पीछे-पीछे जा रहे थे। कुछ ही समय बीता होगा तेज आंधी आयी। अमीर तथा नौकर संभल न सके। दोनों नीचे गिरे और मर गये। तब तक फकीर आ गये, देखे तो उन्हें अफसोस हुआ, बोले मेरे जैसा ही तो यह भी आदमी था, पर इसके अहं ने इसे मार डाला।

सचमुच अहंकार इंसान को बेमौत मारता है। इसलिए इससे बचकर रहें।

हम अपनी दृष्टि को बदलें। जरा दूर तक देखें और सोचें कि इन सारी चीजों से मेरा सम्बन्ध कितने दिनों का है। इन सबका परिणाम क्या है। केवल भौतिक द्रव्यों को जपने वालों का अंत बड़ा दुखद होता है। इतिहास साक्षी है कि सत्ता का लोभी हिटलर आत्महत्या करके मरा। मुसोलिनी ने लाखों लोगों का कल्लेआम करवाया, जिसका परिणाम हुआ कि मुसोलिनी और उसकी पत्नी को मारकर लोगों ने चौराहे पर लटका दिया था। औरंगजेब ने दिल्ली में अपनी सत्ता के उन्माद में लाखों निरपराध लोगों को मरवाया। अंत में पीड़ित होकर वह अपने बेटे को पत्र लिखता है—जिंदगी बहुत बेशकीमती थी। उसे मैंने यूँ ही खो दिया। मैं खाली हाथ आया था और गुनाहों का भार लेकर जाता हूँ। अल्लाह को कैसे मुह दिखाऊंगा? इसी डर से कांपता हूँ। सन् 1980 में शिकागो में एक मिटिंग हुई, जिसमें 10 लोगों को दुनिया का सर्वश्रेष्ठ धनी घोषित किया गया। इनके पास इतना धन था कि अमेरिका का खजाना भी इनके सामने सामान्य था। किन्तु इन दसों लोगों का अंत कुछ इस प्रकार हुआ—चार लोग आत्महत्या करके मरे। दो लोगों का दिवालिया निकल गया। तीन जेल में मरे। एक विदेश के अकेलेपन में अवसादग्रस्त होकर मरा।

सिकन्दर ईरान को जीतकर अहंकार में ऐंठा हुआ अपने सिपाहियों के साथ जा रहा था। सड़क के दोनों किनारे पर लोग उसके दर्शनार्थ खड़े थे। सब सिर झुकाकर अभिवादन करते और रास्ते से एक तरफ हट जाते। सामने से संतों की एक टोली आ रही थी। सिकन्दर ने देखा कि ये फकीर न मेरे लिए रास्ता छोड़ रहे हैं और न अभिवादन कर रहे हैं। उसे बड़ी ठेस लगी। जब संत निकट आ गये तब सिकन्दर ने सत्ता के स्वर में पूछा—तुम लोग जानते हो मैं कौन हूँ? एक वृद्ध संत ने शांत और संयत स्वर में कहा—हां, हम जानते हैं तू कौन है। तू हमारी दासी का दास है। तृष्णा हमारी दासी है और तू तृष्णा का दास है। तूने इतने देश जीत लिया, खजाने भर लिया फिर भी तृप्त नहीं हुआ। सिकन्दर यह सुनकर बहुत लज्जित हुआ। उसे ऐसा महसूस हुआ कि आज यह मेरी पहली हार है। वह संतों के सामने नतमस्तक हो गया।

तृष्णा एवं कामना में डूबे व्यक्ति जिन भोगों को अथक परिश्रम करके भोगते हैं फिर भी सुखी नहीं होते उन्हीं भोग पदार्थों को त्यागी सहज ही त्यागकर सुखी हो जाते हैं। त्याग में अथाह सुख है। तभी तो साधक एवं संत जन बाहर से अकिंचन होकर भी परम सुखी होते हैं। हम अपनी आवश्यकताओं को सीमित और सहज रखें। सौभाग्य से यदि चीजें हमें ज्यादा मिल गयी हैं तो उन पर अपना अधिकार न मानें। अन्यथा वे हमसे पाप करवायेंगी।

सम्पत्ति पर किसी का व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होना चाहिए। महर्षि वेदव्यास जी सामन्तवादी विचार वालों को फटकारते हुए कहते हैं—

यावत् श्रियेत जटारं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।

अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(भागवत 7/14/8)

अर्थात् जितने पर व्यक्ति का पेट भर जाये उतने पर ही उसका अधिकार है। जो इससे अधिक पर अपना अधिकार मानता है वह चोर है, अतः दण्ड का भागी है। किसी ने कहा है—

“संग चले सो धन है संतो, छूटि जाय सो माया ।

करो तैयारी ऐसे धन की, आगे होय सहाया॥

जो आज तथा आगे हमारे साथ रहे, हमें सुखी रखे वही सच्चा धन है। वह है पवित्र कर्म एवं पवित्र विचार, यही आत्मा की खुराक है। यह कार्य संत संगति, सत्संग तथा सद्गुणों के समुच्चय से ही संभव हो सकता है। आत्मदेश में प्रवेश पाने के लिए जिस धन की आवश्यकता है उसे हम संक्षिप्ततः निम्न शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं—

1. निर्भयता धन—निर्भय व्यक्ति को ईश्वर एवं देवी-देवता के कुपित होने का तथा भूत-प्रेत, जिंद-चुड़ैल, मरी-मशान, ग्रह-लगन के कुपित होने एवं छूछा घड़ा देखने, बिल्ली के रास्ता काटने से काम बिगड़ने आदि का कल्पित भय नहीं रहता।

2. दया धन—दयावान व्यक्ति छोटे-बड़े किसी प्राणी को मन, वाणी, कर्म से शक्ति चले तक कष्ट नहीं पहुंचाता।

3. विनम्रता धन—विनम्र व्यक्ति अहंकार त्याग कर शत्रु रहित हो जाता है।

4. धैर्य धन—धैर्यवान व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों में घबराता नहीं है।

5. शील धन—शीलवान व्यक्ति कोमल होता है। वह स्वयं कष्ट सह लेता है किन्तु दूसरों को कष्ट नहीं देता।

6. क्षमा धन—क्षमावान अपमान एवं विरोध करने वाले से विवाद नहीं करता।

7. भक्ति धन—गुरु-भक्ति सारे सद्गुणों की जननी है, इसी लिए इसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करें।

8. संतोष धन—संतोषी को कभी कमी एवं अभाव की खटक होती ही नहीं।

9. सत्य धन—सत्य परायण व्यक्ति हर हाल में जागृत होता है। वह जड़ की परिवर्तनशीलता एवं चेतन की अखंडता को समझकर निज चेतनस्वरूप में स्थित होता है।

10. विचार धन—विचारवान खाते-पीते, बोलते, करते, देखते, सुनते सब समय उचित-अनुचित पर विचार करके उचित को ही ग्रहण करता है।

11. संयम धन—संयमी स्वयं को संभालता है और किसी दूसरे पर अतिक्रमण नहीं करता।

12. सत्संग धन—सत्संग में जाने वाले को सुखी जीवन की चाबी ही मिल जाती है।

13. विवेक धन—आत्मा-अनात्मा, बंध-मोक्ष, सुसंग-कुसंग और ग्राह्य-त्याज्य का विवेक करने वाला परम सुखी होता है।

14. उत्साह धन—उत्साह पूर्वक व्यावहारिक-पारमार्थिक कार्य करने वाला व्यक्ति तन-मन से स्वस्थ होता है।

15. त्याग धन—त्यागवान तमाम विवादों से बचकर आत्मजयी हो जाता है।

16. प्रेम धन—सबसे समता-प्रेम रखने वाला किसी से घृणा नहीं करता।

17. स्वरूपस्थिति धन—दृश्यमात्र से उपराम होकर नित्य अपनी आत्मा में लौट आना सबसे बड़ा धन है।

हर इंसान को धनी होना चाहिए। सच्चा धनी वही है जो घर में, बाजार में, भीड़ में, एकान्त में, अपनों में, परायों में, सम्पन्नता में, विपन्नता में, सब समय, सब जगह, सभी परिस्थितियों में निर्विकार, प्रसन्न, शांत और सुखी रहता हो। यह भौतिक उपलब्धि से नहीं बल्कि आत्मोपलब्धि से संभव है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

गांठी रतन मर्म नहीं जाने, पारख लीन्हा छोरी हो।
कहहिं कबीर यह औसर बीते, रतन न मिले बहोरी हो॥

(बीजक, कहरा 6)

रतन का जतन करु, मांडी का सिंगार।

आया कबीर फिर गया, झूठा है हंकार॥

(बीजक, साखी 114)

अर्थात् जिस धन की हमें आवश्यकता है वह हमारे पास है, किन्तु उसका भेद जाने बिना हम भटकते हैं। इस आत्मधन को वही समझेगा जो पारखी-विवेकी होगा। सद्गुरु कबीर कहते हैं स्वरूपबोध रूपी धन केवल मानव जीवन में ही प्राप्त हो सकता है, क्योंकि यह जीवन विवेक भूमिका है। भोग भूमिका पशु आदि खानियों में यह सब संभव ही नहीं है। इसलिए प्रयत्न पूर्वक शान्ति-धन की रक्षा करें। यहां जो प्राप्त है वह सब क्षणिकता एवं धोखा से भरा हुआ है। दुनिया का सारा वैभव मायावी है, मिलने-बिछुड़ने वाला है। इसलिए इनका अहंकार करना व्यर्थ है।

मन और उसका स्वरूप

(परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा कबीर संस्थान, इलाहाबाद में ध्यान शिविर के अवसर पर दिनांक 30-08-2005 को सायं दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संत समाज, प्रिय सज्जनो तथा देवियो! मन द्रव्य है कि अद्रव्य? मन का स्वरूप क्या है? आज इसी पर कुछ चर्चा की जायेगी।

शुद्ध चेतन में संस्कार नहीं टिक सकते। इसलिए संस्कार जहां टिकते हैं, निश्चित है वह जड़ ग्रंथि होनी चाहिए। मन का जो स्वरूप हमारे सामने उपस्थित होता है वह जाग्रत अवस्था में देखे, सुने और भोगे हुए के संस्कार होते हैं। जिसको हम देखते हैं, सुनते हैं, भोगते हैं उन्हीं के संस्कार हमारे सामने मन बनकर उपस्थित होता है। भोगने का मतलब है मन सहित इन्द्रियों के द्वारा विषयों का सम्पर्क होना। जैसे खुली आंखों से हम इस सभागार को देखते हैं और मन भी उसके लिए तत्पर है क्योंकि मन यदि तत्पर न हो तो आंखें खुली होने पर भी इस सभागार के रूप को हम पूरा ग्रहण नहीं कर सकते। मन के सहित ही इन्द्रियां जब विषयों में लगती हैं तब विषयों का ग्रहण होता है। यदि इन्द्रियों के साथ में मन न हो तो किसी विषय का ज्ञान हमको नहीं होगा।

हम इस सभागार को देखते हैं, किसी की आवाज को सुनते हैं। हमारे सामने एक फल आया उसको हम चखते हैं। तो यह देखे, सुने और भोगे इन तीन के संस्कार हमारे मन पर पड़ते हैं। मन सहित इन्द्रियों के द्वारा विषयों का सम्पर्क भोग है और भोग के दो स्तर हैं। एक स्तर है व्यवहार के लिए जान लेना और दूसरा है उसमें अनुरक्त हो जाना। जान लेना मात्र नहीं बांधता, जो अनुरक्त होना है वही बांधता है। देखे, सुने और भोगे के जो संस्कार अंतःकरण पर पड़ते हैं, वही कालान्तर में याद होते हैं और वही मन है लेकिन वे संस्कार अंतःकरण में कहां पड़ते हैं, कहां टिकते हैं, यही विचारणीय है। अंतःकरण का मतलब होता है जानने का भीतरी साधन।

बाह्यकरण और अंतःकरण ये दो करण होते हैं। करण का अर्थ है जानने का साधन। बाह्यकरण पांच हैं—आंख, नाक, कान, जीभ और त्वचा। आंख से रूप, कान से शब्द, नाक से गंध, जीभ से रस और त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है। दुनिया में केवल पांच ही विषय हैं—शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गंध और इनको जानने के केवल पांच करण हैं—कान, आंख, जीभ, चाम और नाक।

ज्ञान करने का दूसरा साधन है अंतःकरण। अंतःकरण का अर्थ है भीतरी और करण का अर्थ है साधन। जिससे हम सुख और दुख को जानते हैं, अनुकूल और प्रतिकूल को जानते हैं। हमारे मन में अनुकूल या प्रतिकूल जो भावना आती है उसको हम जिससे जानते हैं वही अंतःकरण है। अंतःकरण ज्ञान करने का भीतरी साधन है। अंतःकरण में संस्कार है किंतु वह संस्कार जहां टिकता है और जीव के साथ में जन्म-जन्मान्तर चलता है, उसी को सूक्ष्म जड़ दृश्य कहते हैं और वह अदृश्य है। वह देखने का विषय नहीं है। अनुमान से हम उस पर कुछ विचार करते हैं।

प्रमाण मुख्यतः तीन माने गये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। कितने लोग तो प्रत्यक्ष और अनुमान को ही मानते हैं, शब्द को नहीं मानते हैं लेकिन शब्द तो मानना पड़ेगा। शब्द पर निर्णय करना चाहिए। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण हैं। कितने लोग अनुमान को नहीं मानते हैं लेकिन अनुमान को मानना पड़ता है और अनुमान को भौतिकवादी भी मानते हैं क्योंकि बिना अनुमान माने कई बातों का निर्णय हम नहीं कर सकते। विज्ञान में भी अनुमान चलता है।

हम अनुमान करते हैं कि जहां संस्कार टिकते हैं वह जड़ द्रव्यों की सूक्ष्म ग्रंथि होनी चाहिए क्योंकि बिना

आधार के संस्कार कैसे टिकेंगे। संस्कार जहां टिकते हैं उसको अगर हम सूक्ष्म ग्रंथि, अंतःकरण और सूक्ष्म शरीर इत्यादि कहें तो वह द्रव्य है। अगर उसको हम मन कहें तो मन द्रव्य है। मन द्रव्य है, योगज है, असंग है लेकिन परिनिष्ठित, ठोस, निर्विकार नहीं है। जैसे शरीर भी है तो एक द्रव्य लेकिन यह वैसा द्रव्य नहीं है जो निर्विकार है या इकाई है। यह तो असंख्य कणों का जोड़ है, विकारी है और स्थूलरूप में विद्यमान है। शरीर जिस दिन मिट जायेगा उस दिन इसके कण अलग-अलग हो जायेंगे और तब इस शरीर का रूप नहीं रहेगा। इसी प्रकार अगर हम उस जड़-ग्रंथि को जहां संस्कार टिकते हैं, सूक्ष्म शरीर, अंतःकरण और मन कहें तो मन द्रव्य है। लेकिन संस्कारों को यदि मन कहें तब वह द्रव्य नहीं है क्योंकि संस्कार यदि द्रव्य हों तो संस्कार जितने अधिक होंगे उतनी ही जगह वे घेरते चले जायेंगे और उतना ही पेट फूलता चला जायेगा।

लोग बहुत-से ग्रंथि याद कर लेते हैं और जीवन में न मालूम कितनी बातें याद होती चली जाती हैं। तो जितनी बातों की याद बढ़ती चली जायेगी उतना ही पेट फूलता चला जायेगा लेकिन ऐसा कुछ नहीं है। इसलिए संस्कार कोई द्रव्य नहीं है। अब जो उपयोगी चीज है उसी पर हम चर्चा करें।

हमारे सामने जो संकल्पों वाला मन है यही उपयोगी चीज है। यही परेशान करता है और इसी के संयम से अमृतस्थिति की प्राप्ति होती है। हर द्रष्टा के सामने वृत्तियों की लहर चलती है वही मन है और वह सबके सामने है। चित्त और अचित्त—ये दो शक्तियां हैं। पतंजलि महाराज ने बुद्धिवृत्ति को दृश्य कहा है और चेतन को द्रष्टा। चित्तवृत्ति, बुद्धिवृत्ति और मनोवृत्ति एक ही बात है। चेतन द्रष्टा है और चित्तवृत्ति दृश्य है। चित्तवृत्ति में उलझकर जीव दुखी है। मन एक छाया है। जैसे सूरज और पेड़ इन दो के संयोग से छाया बन जाती है। वैसे ही देह और संसार के संयोग से मन बन जाता है। छाया कोई द्रव्य तो नहीं है लेकिन उसका अहसास होता है। इसी प्रकार मन कोई द्रव्य तो नहीं है लेकिन जीवन में उसी का आंदोलन है।

देखे, सुने, भोगे के संस्कार ही मन है और उसकी बहुत गूढ़ता में पड़कर उलझना ठीक नहीं है। मन द्रव्य है कि अद्रव्य है कि और कुछ है इसी उधेड़बुन में कितने लोग बहुत दिनों तक पड़े रहकर अपना समय गंवा देते हैं। इसलिए उपयोगी बातें करनी चाहिए और उपयोगी बातें सोचनी चाहिए। हवा के समान जीवन का समय भागा जा रहा है और आदमी गाफिल पड़ा है। वह समझता है कि यह जो कुछ मिला है यही सच है लेकिन यह सब सच नहीं है, यह तो झूठ है। यहां का सारा सम्बन्ध झूठ है। जीवन भर आदमी भ्रम में जीता है, अंत दशा को नहीं देख पाता है और काल उसी प्रकार उसको अचानक दबोच लेता है जैसे बिल्ली चूहे को दबोच लेती है। इसलिए निरर्थक बातों में अपने को न उलझाये। मन क्या है, कहां है, कितना गूढ़ है। मन ऐसे है कि वैसे है इसमें न उलझे।

मैंने सहज समाधान करने की चेष्टा की कि संस्कार जहां टिकते हैं वह जड़ ग्रंथि होनी चाहिए। वहीं संस्कार टिकते होंगे। कहां टिकते हैं इससे मतलब नहीं है। मन आपके सामने है और आपको उलझा रहा है तो आप उसको समझें और सुलझायें। मन यदि सुलझ जाये तो आदमी का सारा कष्ट ही दूर हो जाये। सद्गुरु कबीर ने कहा है—“जो मन राखे जतन करि, आपै करता होय।” अगर मन को यत्न करके रखे तो आदमी स्वयं ही ईश्वर है। जिसने मन को संभाल लिया वही परमात्मा है। संकल्प-विकल्पों का प्रवाह ही मन है। मन सबको रुला रहा है।

सामान्य लोग एक दूसरे से मिलते हैं, कुशल-मंगल पूछते हैं और कुशल-मंगल पूछकर रुक जाते हैं क्योंकि सामान्य लोगों से अपनी व्यथा कहना लोग उचित नहीं समझते हैं। हां, संतों से वे अपनी परेशानी कहते हैं। उसमें उनकी एक दृष्टि तो यह रहती है कि संत इस काम में लगे हैं इसलिए वे ही कुछ रास्ता बतायेंगे और कुछ लोग जिनको ज्यादा समझ नहीं है, वे समझते हैं कि संत को जब हम बतायेंगे तो वे दुआ कर देंगे और तुरत-फुरत में हमारा सब ठीक हो जायेगा।

इस आशा से भी लोग संत से अपनी परेशानी कहते हैं लेकिन संत कोई जादू नहीं मार देगा कि आपका सब ठीक हो जायेगा। जादू पूरा झूठ है और जादू नाम की चीज कुछ है ही नहीं। वह तो केवल हाथ की सफाई, बात की सफाई, दवाई और वस्तुओं की बनावट है। इन सबको लेकर चार सौ बीस का काम जादू होता है और उसी चार सौ बीस में जादूगर लोगों को चमत्कृत कर देते हैं। लोग समझते हैं कि यह जादू है लेकिन जादू कोई चीज नहीं है। महात्मा कुछ जादू कर देंगे ऐसा कुछ भी नहीं है। महात्मा रास्ता बताते हैं। महात्माओं और संतों से लोग अपनी व्यथा कहते हैं। कल मैंने आपसे कहा ही था कि हमारे सामने तो रोज यह बात आती है। लोग आते हैं और कहते हैं कि महाराज, मन में हरदम बेचैनी रहती है। जब हरदम बेचैनी रहती है तब जीवन क्या है।

बेचैनी क्यों रहती है क्योंकि बोध नहीं है, समझ नहीं है और साधना नहीं है। जन्म हुआ तभी से विषयों का ग्रहण होना शुरू हो जाता है। बच्चे ने आंखें खोली। उसको सामने जो दिखाई दिया उसकी फोटो उसके अंदर जम गई। वहीं से चंचलता आरम्भ हो गयी। फिर खाता है, पीता है, स्पर्श करता है और इस प्रकार सब तरफ से संस्कार ग्रहण करता चला जाता है और धीरे-धीरे उसके अन्दर में संस्कारों का जखीरा इकट्ठा होता चला जाता है। उसके अंदर एक बदहवासी रहती है। बाहर की खुजलाहट रहती है बस और कुछ नहीं रहता है।

आदमी कुछ खा लिया, कुछ पी लिया, कुछ देख लिया, कुछ सुन लिया, सब में एक खुजलाहट है। उस खुजलाहट में ही वह आनन्द मान लेता है और उसी के संस्कार उसके चित्त में बनते चले जाते हैं और वे ही संस्कार उसको उलझाते चले जाते हैं। जीवन भर आदमी उलझता चला जाता है। जीवन में उपलब्धियां चाहे जितनी हों, सब पीड़ा ही देनेवाली होती हैं लेकिन उन्हीं उपलब्धियों में जीवन का गुजर भी करना होता है। वही खास चीज है।

खास चीज पर हमारा ध्यान कहां है। भूख लगने पर जो गरीबों का भोजन है नमक, रोटी, वही मिल जाये तो बहुत है। मैं यह नहीं कहता कि धनी लोग जो भोजन करते हैं वही भोजन मिले किंतु मैं कहता हूं गरीबों को जो भोजन मिलता है वही मिल जाये। छौंक-बघार, तेल-तल्लू, मेवा-मिष्ठान्न, आदि नहीं, किंतु पानी में उबाला हुआ अन्न और सब्जी जो हो वही सादा-गोदा कुछ मिल जाये। तन ढकने के लिए कुछ कपड़े मिल जायें और सोने के लिए कुछ जगह मिल जाये बस काफी है। अब जो काम करना है वह है मन को ठीक करना लेकिन इसके लिए ख्याल कहां है। आदमी में तो होड़ मची है कि “उनके ऐसा है तो मेरे वैसा क्यों नहीं होगा।” धन की होड़ है, मकान की होड़ है, गाड़ी-घोड़ा, पद-प्रतिष्ठा, पूज्यता-सत्कार हर बात में होड़ मची है और इसी में आदमी उलझता चला जाता है।

मन सब को परेशान किये है और इस मन को वश में करने का प्रयास बहुत कम लोग करते हैं। मन का स्वरूप मान्यता का है। मान-मानकर वह दुख बटोरता है। हर आदमी अनुकूल मानता है और प्रतिकूल मानता है, राग मानता है और द्वेष मानता है, प्रिय मानता है और अप्रिय मानता है। इस प्रकार मान-मानकर वह दुख का जखीरा इकट्ठा कर लेता है और उसी में जलता रहता है। इस मन को शुद्ध, संयत और शांत करने का प्रयास नहीं किया जाता है। बचपन की अवस्था तो अबोध में बीत जाती है, कौमार्य अवस्था अल्हड़पन में बीत जाती है, अनेक कल्पनाएं आरम्भ हो जाती हैं। उठती जवानी में और बदहवासी हो जाती है फिर आदमी भोगों में लग जाता है, फिर धन कमाने में लग जाता है। संत और गुरु का कुछ आदेश-निर्देश तो है नहीं, अपना कुछ समझ है नहीं तो आदमी रुके कैसे, इसलिए वह बहता चला जाता है।

जीवन भर आदमी जो कुछ करता है उसका परिणाम कांटा ही कांटा होता है। खजूर के पेड़ में जैसे नीचे से लेकर ऊपर तक खूंटियां ही खूंटियां रहती हैं

ऐसे ही आदमी के जीवन में भी शुरू से लेकर अंततक कांटे ही कांटे होते हैं। राग और द्वेष इन दो की प्रतिक्रिया में प्राणी जीवनभर जलता रहता है। आदमी कहीं राग करता है तो कहीं द्वेष और इसी राग-द्वेष में वह अपना मूल्यवान जीवन बिता देता है। “सुखानुशयी रागः”—जहां सुख की अनुभूति हुई वहां राग किया और “दुखानुशयी द्वेषः”—जहां दुख की अनुभूति हुई वहां द्वेष किया। राग-द्वेष की प्रक्रिया में जीवन चला करता है। इन्हीं संस्कारों में आदमी जला करता है। असली काम है मन को ठीक करना।

मन अपने आप ठीक नहीं होगा। मन को पकड़कर भी आप उसे ठीक नहीं कर सकते। मन की तलहटी में जो भूमिका है उसको पहले ठीक करना पड़ेगा। जैसे बिना जोते खेत में बीज डाल देने से फसल नहीं होती। खेत में कमाई की जरूरत होती है। उसमें जो घास-फूस हो उसको निकाल देना होता है, कांटे-कंकड़ जो हो उसे निकाल देना होता है। कई बार या जितना उचित हो उतनी बार जुताई करना, खाद डालना, पानी देना होता है। मिट्टी की जब पूरी सेवा कर ली जाती है तब ऋतु के आने पर बीज डाला जाता है और समय-समय पर फसल की सेवा करते रहा जाता है तब फसल होती है। वैसे ही अपने इस मन की भी कमाई करनी पड़ती है।

इस मन को ठीक करना सहज नहीं है। कठिन भी नहीं है लेकिन जब किया नहीं जाता है तब कठिन लगता है। और—“सहजे गुड़ पाके तो को न गपाके”—गुड़ अगर सहज ही पक जाये तो कौन ऐसा है जो गुड़ न खाय। गुड़ के पकाने में वर्ष भर लग जाता है। बड़ी लम्बी प्रक्रिया चलती है तब गुड़ हम लोगों को खाने को मिलता है।

इसी प्रकार पूरे जीवन को शोधने से मन अमृत होता है। इन्द्रियों को जितना चंचल करोगे मन उतना चंचल रहेगा। इसलिए इन्द्रियों को संयमित करो। विरक्त लोग तो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते ही रहें, गृहस्थों को भी चाहिए कि जितना सम्भव हो ब्रह्मचर्य

का पालन करें और शर्त यही है कि एक-दो बच्चे हो गये तब ब्रह्मचारी बन जाये क्योंकि इस उत्तेजना में दुख के सिवा कुछ रखा नहीं है। उसमें सुख की एक कल्पना है। वह सुख क्या है—शरीर की उत्तेजना है, नसों की झनझनाहट है, शक्ति का क्षय है, मलिनता है, पश्चाताप है और कुछ नहीं है। कुछ यदि है तो वह वासना-तृष्णा की वृद्धि है, भवसागर की पुष्टि है और चित्त की अशांति है। इसलिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिए।

अब कोई है जो अत्यन्त कामातुर है। बहुत विह्वल चित्तवाला है और ब्रह्मचर्य का ढोंग किये बैठे है वह तो बेकार है। ऐसा ब्रह्मचारी नहीं होना चाहिए। फिर वह अपने ढंग से बहेगा। उसमें भी जितना बन सके संयम रखे। अगर वह अपने को स्वस्थ चित्त से संभाल सकता है तो संभाल ले।

मन को संयमित करने के लिए सबको ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। खान-पान में संयम रखना चाहिए। सदैव संतुलित खाओ, कीमती भोजन के प्रलोभन में मत पड़ो। कीमती भोजन में ही ज्यादा प्रोटीन और विटामिन होती है इस धोखे को छोड़ दो। कितने लोग काजू और किसमिस खूब खा-खाकर रोग बुला लेते हैं। उनके पास पैसा है और उनकी समझ में है कि काजू और किसमिस में बड़ा बल है तो खूब छान-घोंट करने लग जाते हैं। घी खूब खाने लगते हैं, दही-दूध खूब खाने-पीने लगते हैं। कई टानिक खाने-पीने लगते हैं और कोई न कोई भयंकर रोग बुला लेते हैं। यह सब पागलपन है। सादा, संयत और जो गरीबों का भोजन है वही असली भोजन है और उसमें बहुत प्रोटीन और विटामिन है।

जो प्रोटीन और विटामिन आपके अन्दर है उसको बहने न दो बस। किसी बरतन में ऊपर से बढ़िया पानी डाल रहे हो और उसके नीचे छेद है जिसमें से सब पानी बहा जा रहा है तो उसमें पानी इकट्ठा कैसे होगा। नीचे छेद न रहे, पानी बहे न, बस ठीक है। ब्रह्मचर्य से रहोगे, संयम से रहोगे, खुश रहोगे तो जो खाओगे उसी

में खूब प्रोटीन और विटामिन मिलेगा।

किसी से लाग-डांट की वृत्ति हो तो उसको छोड़ दो। किसी से द्वेष न करो। किसी से ईर्ष्या न करो। किसी के ऐश्वर्य को देखकर ललचाओ मत। किसी की उन्नति को देखकर संताप न करो। देखकर खुश रहो। हमारे आस-पास के लोग हमसे ज्यादा उन्नति करें इससे ज्यादा उन्नति और क्या होगी। ईर्ष्या छोड़ दो, बुराई छोड़ दो।

निरपराध पर अपराध की कल्पना न करो। जिसमें अपराध है उसको यदि जानते हो तो उसके अपराध का गीत न गाओ। उसके अपराध को कहने में दिलचस्पी न लो। उसमें अपने मन को खराब न करो। किसी में बुराई है तो उसका पाठ न बनाओ। स्वयं सावधान रहो और अपने साथियों को भी सावधान कर दो बस। और जिसमें जो बुराई है ही नहीं, जान बूझकर उसपर बुराई का आरोपण करोगे तो आपका भयंकर पतन होगा। कोई गंदी चीज है तो आंखें बन्द कर किनारे होकर बचाकर चले जाओ। टट्टी में पत्थर मारोगे तो वह उछलेगी और तुम्हारे भी ऊपर आकर पड़ जायेगी।

इस विषय पर तथागत बुद्ध ने अपने ग्रंथ धम्मपदम् में बहुत बढ़िया बात कही है। जो निष्पाप को लांक्षित करता है, जो निर्मल व्यक्ति के ऊपर दोष मढ़ता है उसके विनाश का सूत्र उन्होंने दिया है और कहा है कि आठ प्रकार से उसका भयंकर विनाश होता है। और यह तो मैंने भी अपने नजरों से देखा है। निर्मल पुरुष की निंदा के लिए कमर कसा गया, उनकी निंदा की गयी और उसका परिणाम क्या हुआ? जिन्होंने वैसा किया वे जीवन भर दुखी और पीड़ित रहे। अंत में दिमाग से अर्द्धविक्षिप्त होकर शरीर छोड़े। इसलिए निरपराध पर तो अपराध की कल्पना ही मत करो। जिसपर अपराध हो उससे केवल सावधान हो जाओ। उसका पाठ मत बनाओ। कभी भी मानसिक विकारों के अधीन न हो और जीवन सरल रखो।

मनुष्यता या साधुता जो भी कह लीजिए, एक ही है दो नहीं है। सद्गुरु कबीर ने तो मनुष्यता को ही साधुता

कहा है। उन्होंने कहा है—“मानुष होय के ना मुआ।” और पंचग्रंथी में बारम्बार यही बात है कि जो मनुष्य हुआ, वह अमरत्व पा गया। मनुष्यता है चित्त की सरलता। चित्त की सरलता समस्त सद्गुणों की जड़ है। सरल चित्त रहना सबके लिए जरूरी है और साधु को तो सरल चित्त रहना ही चाहिए। साधु में वक्रता नहीं रहना चाहिए, दुराव-छिपाव नहीं रहना चाहिए किंतु सरल चित्त रहना चाहिए और अंदर-बाहर एक रहना चाहिए। इसीलिए नीति में लिखा है कि साधु को परखना सरल है और दुष्ट को परखना कठिन। क्योंकि दुष्ट तो ऊपर से सरल बन जाता है, साधु बन जाता है और लोग उससे धोखा खा जाते हैं लेकिन जो साधु होता है वह बाहर-भीतर सरल होता है। जो बाहर-भीतर एक होता है इसी से पता लग जाता है कि यह साधु है। चित्त की सरलता सबसे बड़ी चीज है, सबसे बड़ा सद्गुण है। सरल चित्त रहना बहुत आवश्यक है, वक्रता बड़ी घातक है इसलिए वक्रता नहीं रहना चाहिए।

जो कुटिल चित्त है वह कभी शांति नहीं पाता है। अगर मन की शांति चाहते हो तो सरल बन जाओ और भोग ठाट ठटने की चेष्टा न करो। दूसरे के भोगों की तुलना में मत पड़ो। दूसरे की तुलना में पड़ो तो करो और बटोरो भोग। फिर भोगो और जलो। यदि शांति चाहते हो तो किसी के भोगों की तुलना में मत पड़ो और अपने जीवन को संक्षिप्त बनाओ। जितना बन सके उतना अपने को बटोरो। अपने को संभालो और वाद-विवाद में, कलह में न पड़ो। ऐसी रहनी से जब हम रहेंगे तब हमारा मन पवित्र होगा।

हम यदि गला तक टूंस-टूंसकर खायेंगे, जीभ के लम्पट रहेंगे, अनियमित जीवन बनायेंगे, हमारा सोना-जागना अनियमित होगा, अगर हमारी वृत्ति भोगी होगी, अगर हम अपनी वृत्ति राग-द्वेष और कलह वाली बनायेंगे तो हमारा मन अशांत होगा और फिर उससे हमें परेशानी होगी। उलझ जाना, उद्वेगित हो जाना और तनिक-तनिक बातों में लड़ने-झगड़ने का स्वभाव

रखकर किसी का मन ठीक नहीं हो सकता। मन कोई ऐसी चीज थोड़े है कि उसको पकड़ लो बस वह संयमित हो जाये। मन के नीचे जो उसकी भूमिका है वह जब तक ठीक न होगी तब तक मन ठीक न होगा।

पूरे जीवन को पवित्र रहनी में व्यतीत करने से धीरे-धीरे मन सुन्दर होता चला जाता है। फिर विशेष साधना में भी बल दो। जो अपने मन को वश में रखते हैं उनसे राय लो। वश में कौन रखता है, जो साधक है वही मन को वश में रख सकता है। गृहस्थ हों या विरक्त, जो साधना करते हैं उन्हीं से यह आशा की जा सकती है कि वे दूसरे को उचित राय दे सकते हैं।

दो धारयें हैं—गृहस्थ और विरक्त। दोनों में साधक होते हैं और दोनों में प्रपंची भी होते हैं। इसलिए जो साधक हों, चाहे वे गृहस्थ हों या विरक्त, उनसे राय लो। साधक का लक्षण है उद्वेगरहित और तर्कहीन व्यक्तित्व। उद्वेगहीन मन ही बताता है कि वह आदमी साधना में है। अब साधक है तो तुरन्त तो उद्वेगहीन हो नहीं सकता, धीरे-धीरे होगा लेकिन साधना की परिपक्वता का अर्थ है उद्वेगहीन हो जाना और उद्वेगहीन होना लम्बी प्रक्रिया है। मन का अहंकार उद्वेगहीन होने नहीं देता है।

हमारे अंदर में जो अहंकार है, झूठी चीजों में जो हम अपने को साट दिये हैं वे सब झूठ हैं। मेरा शरीर अभी छुट जाये तो जो कुछ यहां है उससे मेरा क्या मतलब होगा। मेरी किताबें देश और विदेश में फैली हैं। हजारों-लाखों लोग मनन-चिंतन करते हैं और लाभ लेते हैं इससे मेरा क्या मतलब। मेरी पुस्तकें पढ़कर कोई कृतार्थ होकर बैठा है लेकिन मैं उलझा हूं तब मेरी किताब मेरे लिए क्या करेगी। मेरा शरीर छुट गया तो यहां की सारी चीजों से मेरा क्या मतलब रहेगा और शरीर तो छुटा ही है। वह तो हरदम छुटा-छुटाया ही है।

यहां किस चीज से हमारा सम्बन्ध है। किसी भी चीज से नहीं है लेकिन सम्बन्ध भी है। इस सम्बन्ध में

हम यदि जागते नहीं हैं तो हमारा नरक है। इसलिए इस सम्बन्ध में हम जागें। यह सम्बन्ध झूठा है और एकदम क्षणिक है! एकदम क्षणिक है!! एकदम क्षणिक है!!! और हवा की तरह भाग जाने वाला है।

गृहस्थ शरीर छोड़ते हैं, विरक्त शरीर छोड़ते हैं, बड़े-बड़े मठाधीश शरीर छोड़ते हैं। दुनिया भर में प्रचार करने वाले लोग भी शरीर छोड़ते हैं। कोई यहां रहने वाला नहीं है। अपनी असंगता का निरंतर बोध करें और अहंकार को छोड़ें। “जहां सांति सदगुरु की दई, तहां क्रोध की जर जरि गई। सकल काम वासना बिलानी, तुलसी इहै सांति सहिदानी ॥” यह बैराग्य संदीपनि में लिखा है।

बैराग्य संदीपनि गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज की एक पतली-सी पुस्तक है। पूरी की पूरी अमृत है। ‘तुलसी पंचामृत’ नाम की मेरी एक पुस्तक है उसमें मैंने पांचवें अध्याय में उसको रखा है।

“जहां सांति सदगुरु की दई” गोस्वामी जी महाराज कहते हैं कि सदगुरु की दी हुई शांति जिसके जीवन में है। वहां “क्रोध की जर जरि गई” वहां क्रोध की जड़ भस्म हो जाती है। “सकल काम वासना बिलानी” सारी काम वासनार्यें, सारी तृष्णार्यें समाप्त हो गयीं। “तुलसी इहै सांति सहिदानी” यही शांति का लक्षण है। अचल, अडोल, अबोल और स्थिर स्थिति यही है।

“मन मस्त हुआ तब क्यों बोले” जब मन मस्त हो गया, विकारहीन हो गया तब क्यों बोले। यहां यह नहीं कहा गया कि मुख से कुछ कहे ही न। यहां बोलने का अर्थ है कि कुतर्क में क्यों पड़े, विवाद में क्यों पड़े, कहां उलझे। हम लोग व्यवहार में भी जितनी आवश्यकता होती है उससे अधिक बोल जाते हैं इसलिए उलझ जाते हैं। इसलिए धीरे बोलें, कम बोलें और संभाल कर बोलें। इससे बड़ा लाभ होगा। हम बिना समझे ही बोलते हैं। हम उत्तेजित होकर बोलते हैं। हम दूसरों को तकलीफ देते हैं और अपना भी तकलीफ पाते हैं। लेकिन उसमें पश्चाताप ही हाथ लगता है और कुछ लाभ नहीं होता है। इसलिए

संभालकर बोलें, सोचकर बोलें।

साहेब ने कहा है—

बोल तो अमोल है, जो कोई बोले जानि।

हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहिर आनि ॥

साहेब कहते हैं कि बोलना तो अमूल्य है लेकिन कोई यदि बोलना जाने तब। बोलने का तरीका क्या है—“हिये तराजू तौलिके तब मुख बाहर आनि।” हमें सोचना चाहिए कि हम अपने हृदयरूपी तराजू पर तौलकर कितना बोलते हैं। पूरे जीवन की रहनी को पवित्र बनाने से मन संतुलित होगा। जिसने मन को ठीक कर लिया, वही इस संसार-सागर में सफल है और जिसने मन को नहीं ठीक किया वह असफल है। चाहे वह लोकरीति में जितना भी सफल हो, वह सब बेकार है।

मन के विषय में शुक्ल यजुर्वेद के चौतीसवें अध्याय में एक से छः मंत्रों में बहुत सुन्दर वर्णन आया है। वह इस प्रकार है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

जो देव जाग्रत अवस्था में दूर चला जाता है। और वह सोते समय भी वैसे ही दूर चला जाता है। जो ज्योतियों में एक ज्योति है, दूरगामी है, खूब दौड़ने वाला है। वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो। यजुर्वेद में यह शिवसंकल्प मंत्र भी कहा जाता है। इसमें शिवसंकल्प है भी। शिवसंकल्प का अर्थ है मंगल, कल्याण। हमारा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो। दुखहीन स्मरण वाला ही कल्याणकारी संकल्प वाला है। हमारी याद में, हमारे स्मरण में पीड़ा न हो किंतु शांति और सुख हो।

इस मंत्र में ऋषि ने मन को देव कहा है— “यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं।” कबीर साहेब ने “मन गोरख” “मन योगी” सब कुछ मन को कहा है। मन को उन्होंने ठग भी कहा है और धूर्त भी कहा है। शुद्ध भी कहा है और अशुद्ध भी कहा है। योगी भी कहा है, गोरख भी कहा है। उन्होंने मन पर बड़े विस्तार से कहा

है। साखी प्रकारण में ‘मन को अंग’ नाम का एक लम्बा प्रकरण ही है।

यजुर्वेद के शिवसंकल्प मंत्र में ऋषि कहते हैं कि मन रूपी जो देवता जाग्रत अवस्था में दूर-दूर चला जाता है, वैसे ही सोते समय भी दूर-दूर चला जाता है। सोते समय कब दूर चला जाता है। जब पूरी सुषुप्ति नहीं रहती है बल्कि स्वप्न की अवस्था रहती है। स्वप्न में भी मन दूर-दूर चला जाता है लेकिन कहीं चला नहीं जाता है। रहता तो है वह जहां का तहां ही। जाग्रत अवस्था में याद हो जाना ही चला जाना कहलाता है। हम यहां बैठे हैं और कलकत्ता हम देखे-सुने हैं तो हमारा मन वहां चला गया लेकिन वह कलकत्ता कहां चला गया। कलकत्ता की रिकार्डिंग पहले से मन में है। वह चित्र मन के सामने आ गया। वही मानो चला जाना हो गया।

स्वप्न में भी मन कहीं चला नहीं जाता है। कुछ लोग मानते हैं कि जीवात्मा स्वप्न में निकल कर घूमता है। ऐसा नहीं है। न जीवात्मा स्वप्न में निकल कर घूमता है और न मन कहीं निकल कर घूमता है। जहां जो है वहीं है। वह तो जो रिकार्डिंग अन्दर में बनी है उसी की याद हो जाना चला जाना है। स्वप्न में कोई चित्र सामने आ गया। स्वप्न के चित्रों में विकृति रहती ही है लेकिन जाग्रत अवस्था में विकृति नहीं रहती है। जाग्रत अवस्था में स्वस्थ अवस्था रहती है। जाग्रत अवस्था में आप जहां चाहें जायें, जो चाहें सोचें उसको बदलें लेकिन स्वप्न में यह बात नहीं रहती है। उसमें तो सामने नदी आ गयी, फिर पर्वत आ गया। मित्र आ गया फिर दुश्मन आ गया। चलना चाहते हैं लेकिन चल ही नहीं पाते हैं। भागना चाहते हैं लेकिन भाग नहीं पाते हैं। सपने में सब खण्ड-मण्ड होता है। स्वप्न में स्ववशता नहीं रहती है।

ऋषि कहते हैं कि जो मन देवता जाग्रत अवस्था में दूर चला जाता है और स्वप्न में भी वह दूर चला जाता है वह दूरगामी है। वह ज्योतियों में एक दिव्य ज्योति है। यह मन दिव्य ज्योति है। वह मेरा मन शिव संकल्प

वाला हो। निर्मल मन हो जाये तो यही मन दिव्य ज्योति है। यह हमारा मन बहुत सशक्त साधन है। मन के बिना कुछ नहीं होने वाला है।

कुम्भहिं बांधा जल रहै, जल बिनु कुम्भ न होय।

ज्ञानहिं बांधा मन रहै, मन बिनु ज्ञान न होय ॥

कुम्भ अर्थात् घड़ा में पानी टिकता है। कुम्भ यदि फूट जाये तो उसमें रखा सारा पानी बह जायेगा। लेकिन जल के बिना घड़ा नहीं बनेगा। जल को मिट्टी में सानकर तब घड़ा बनता है। इसी प्रकार ज्ञान के संयम में मन स्थिर रहता है। लेकिन मन के बिना ज्ञान नहीं होता है। जब मन जगता है तब ज्ञान शुरू होता है। गाढ़ी नींद में आपका मन बीजरूप में हो जाता है तब कुछ ज्ञान नहीं होता है लेकिन जैसे ही मन जगा कि ज्ञान होने लगा और ज्ञान होने लगा तो विपत्ति भी आने लगी। क्यों आने लगी? क्योंकि आपने खराब व्यवहार किया। इसलिए विपत्ति तो आयेगी ही आयेगी और तब होगा केवल नरक! नरक!! नरक!!! आपने अच्छा व्यवहार किया है। जीवन अच्छा जीया है। जीवन अच्छा जीते हैं तो नींद जैसे खुलेगी वैसे आनन्द! आनन्द!! आनन्द!!! जब किसी से वैर नहीं, किसी से मोह नहीं, कोई इन्द्रिय लालसा नहीं, भोगों की कुछ लालसा नहीं, कुछ इच्छा नहीं, केवल सेवा करते हैं कर्तव्य करते हैं, निष्काम रहते हैं तब स्वर्ग ही स्वर्ग है। तब सब समय स्वर्ग है।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।

यदपूर्वं यक्ष्मन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

ऋषि कहते हैं कि धीरवान मनीषिगण जिससे अच्छे कर्म करते हैं। जो अपूर्व पूजनीय है। यहां मन के प्रति ऋषि का कितना सकारात्मक पक्ष है। वे कहते हैं कि मन अपूर्व पूजनीय है। उसके समान पूजनीय कोई नहीं है। अपूर्व उसे कहते हैं जो अद्वितीय हो। यह मन अद्वितीय पूजनीय है। इसको संभालो। यह बात ऋषि कहते हैं। ऐसी बातें कबीर साहेब ने साखी प्रकरण में खूब कहा है। वह बहुत विस्तार से है। ऋषि कहते हैं कि मन को पूज लो। मन को संभाल लो बस

काम बन जायेगा। मन की पूजा क्या है। मन को संभाल लेना, उसको विकारों से बचा लेना। हरदम इसको संभाले रहना, हरदम संभाले रहना। ऋषि कहते हैं कि जो अत्यन्त पूजनीय है। वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।

यस्मान्नऋतेकिंचनकर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

जो ज्ञानस्वरूप है। सदैव ज्ञानवान है। मन ज्ञानवान है। चेतन की सत्ता से यह मन ज्ञानवान रहता है। यदि यह मन चेतन की सत्ता न पाये तो यह स्वतः ज्ञानवान नहीं है। चेतन की सत्ता से ही यह ज्ञानवान है। मनोवैज्ञानिकों ने चेतन और मन को एक में मिला दिया है। चेतना, बुद्धिवृत्ति, सद्बुद्धि सब एक में घालमेल कर दिया है। इसलिए उस मनोविज्ञान से आत्मज्ञान नहीं होगा। आत्मज्ञान के लिए अध्यात्मज्ञान की जरूरत है और उसके लिए शास्त्रीय ढंग से मनन करना हो तो योगदर्शन का मनन करें। योगदर्शन का जो भाष्य यहां से किया गया उसमें उसका खूब विवरण दे दिया गया है।

ऋषि कहते हैं—जो चिंतनशील है। ज्ञानस्वरूप है, और सारे संस्कारों को धारण करता है। जो प्रजा के अन्तर में अमृत ज्योति के रूप में है। मन के लिए ऋषि के सारे शब्द कितने सकारात्मक निकल रहे हैं, आप विचार करें। वह कहता है कि जो अमृत ज्योति के रूप में है। अमृत का मतलब है कि जो मरता नहीं है। जो सब समय है। मन अमृत है। वह मरता नहीं है। वैसे तो सिद्धान्ततः मन जड़ है, चेतन नहीं है। चेतन के आधार में वह चैतन्य होता है और हर समय वह बना रहता है। इसीलिए ऋषि ने उसको अमृत कहा। अमृत का दूसरा अर्थ है कि यदि आप मन को शीतल कर लिये तो आप शीतल रहेंगे। वही अमृत है।

जो प्रजा में अमृत ज्योति के रूप में स्थित है। जिसके बिना आप कुछ भी नहीं कर सकते। मन के बिना आप क्या कर सकते हैं, कुछ भी नहीं कर सकते

हैं। “तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु”—वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो।

सदैव अच्छा सोचे, बुरा न सोचे। कुटिलता मन में न रहे। मैल मन में न रहे। लोग बड़े चतुर और बड़े होशियार होते हैं। खूब छिपाकर कुटिलता रखते हैं। हजारों रेशम के पर्दे के भीतर सूई को लोग लपेटते हैं लेकिन वे यह नहीं समझते हैं कि सभी परतों को छेदकर सूई बाहर आ जायेगी। वे तो मानो पानी में बहुत नीचे टट्टी करते हैं लेकिन उनको यह पता नहीं है कि वह उनकी टट्टी उतरा कर पानी के ऊपर आ जायेगी और पहले उनके ही शरीर में छू जायेगी। लोग बड़े चतुर हैं लेकिन अपनी चतुराई से वे अपना ही नरक करते हैं। इसलिए चतुर न बनो किंतु सरल बनो। निर्मल बनो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।

येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

ऋषि कहते हैं—जिससे यह भूत, वर्तमान और भविष्य सबका ग्रहण होता है। “भूत” जो बीत गया है। वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान में लिखा है, परम्परा से सुन रहे हैं उसका ज्ञान कैसे होगा। इसी मन से होगा। मन आपका सोया हो तो आप वेद कैसे पढ़ेंगे, शास्त्र कैसे पढ़ेंगे। भूत का ज्ञान मन से होगा, वर्तमान का ज्ञान मन से होगा और भविष्य का ज्ञान-भविष्य के विषय में अटकल करना यह भी मन से होगा।

भूत, भविष्य और वर्तमान जिस मन से ग्रहण होता है। मन की अमृतमय शक्ति के द्वारा अर्थात् जिस अमृतमय मन के द्वारा भूत, भविष्य और वर्तमान सबका ज्ञान होता है। जिसके द्वारा सात ‘होता’ यज्ञ करते हैं। ‘होता’ कहते हैं यज्ञ करने वाले को। आंख, नाक, कान, जीभ, चाम, मन, बुद्धि यह शरीर में सात ‘होता’ हैं। ये यज्ञ करने वाले हैं। यह सातों हरदम यज्ञ करते रहते हैं। यज्ञमय जीवन बना दो।

घोर आंगीरस ने इसीलिए छान्दोग्योपनिषद् में श्रीकृष्ण महाराज को जीवन यज्ञ का उपदेश किया था। सात ‘होता’ हैं। सात पुरोहित—सात हवन

करने वाले आपके जीवन में बैठे हैं और वे हरदम यज्ञ कर रहे हैं। आंख यज्ञ कर रही है। नाक यज्ञ कर रही है। कान कर रहे हैं, जीभ कर रही है, चाम कर रही है। मन कर रहा है और बुद्धि कर रही है। इनको संभालो, जिससे गलत न होने पाये। ये सातों ‘होता’ जिस मन से यज्ञ करते हैं वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।

यस्मिंश्चितं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

जिस मन में ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद प्रतिष्ठित हैं। कैसे प्रतिष्ठित हैं? रथ की नाभि में जैसे अरे होते हैं। रथ के पहिये में नाभि होती है और अरे होते हैं। चक्के में परिधि और नाभि दोनों होते हैं। जो बाहर का पट्टा है वह परिधि है और जहां पर सहतीरें चुभी रहती हैं वह नाभि है। नाभि में आड़ी और तिरछी सहतीरें लगी रहती हैं। चाहे साइकिल हो चाहे मोटर-साइकिल हो, चाहे बैलगाड़ी का पहिया हो सबमें इसी प्रकार आड़ी और तिरछी सहतीरें लगी रहती हैं। परिधि से नाभि में जो तिरछे-तिरछे सहतीरें लगी रहती हैं उनको अरे कहते हैं।

ऋषि कहते हैं कि जैसे रथ के चक्के की नाभि में परिधि से अरे जुड़े रहते हैं। नाभि तो छोटी-सी रहती है और परिधि बड़ी होती है और परिधियों से अरे आ-आकर नाभि में जुड़े रहते हैं इसी प्रकार यह विस्तृत ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद सब जिस मन में जुड़े रहते हैं जिसके बिना सब वेद भूल जायेंगे। जिसमें प्राणियों का चिंतनशील मन पूर्णतः ओत-प्रोत है। जितना चिंतन होता है इसी मन में तो होता है। इसलिए “तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु”—वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।

हत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

जैसे सुसारथि अर्थात् अच्छा कोचवान रथ हांकता है तो लगाम को संभाल कर घोड़ों को हांकता है। उसी

प्रकार जो मन इस पूरे शरीर को चला रहा है। सारथि जब रथ में बैठता है तब लगाम को संभालकर घोड़े को उचित पथ पर ले चलता है। उसी प्रकार यह मन इस जीवन में बैठकर सारे इन्द्रियों को प्रेरित कर चलाता है। अगर कहीं यही गड़बड़ हो जाये तो रथ गड्ढे में चला जायेगा। अगर सारथी शराब पी लिया है तो वह घोड़े और रथ सबको गड्ढे में ले जायेगा।

शरीर रथ है और इन्द्रियां घोड़े हैं। जो सबके हृदय में “प्रतिष्ठम्” स्थित है, जो अजिर है। जो बूढ़ा नहीं होता है। मन कहां बूढ़ा होता है। वह सदैव जवान बना रहता है। जो तेज है, “तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु” वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो।

ये छः मंत्र ऋषि ने कहा है और अंतिम मंत्र में घोड़े का वर्णन करके ऋषि मन को मानो बिलकुल संभालने का निर्देश कर रहे हैं। मन इन्द्रियों का प्रेरक है, इसलिए मन ठीक हो तो सब ठीक होगा। सद्गुरु कबीर ने कहा है—

तन राता मन जात है, मन राता तन जाय।

तन मन एकै होय रहै, तब हंस कबीर कहाय ॥

जहां तन जाता है वहां मन चला जाता है और जहां मन आसक्त होता है वहां तन चला जाता है। जिसके तन और मन दोनों स्ववश हो गये हैं, साहेब कहते हैं वही हंस है, वही विवेकी है।

आज आपके सामने यह विचार किया गया कि मन का स्वरूप क्या है। जहां संस्कार टिकते हैं वही उसका स्वरूप है और वह जड़ग्रंथि होनी चाहिए। अगर उसको हम मन कहें तो मन द्रव्य है लेकिन जो उपयोगी है जो आनुभविक है, वह है संकल्प-विकल्पवाली स्थिति और यही मन है और यही मन गड़बड़ व्यवहार से और गड़बड़ समझ से गड़बड़ाता है और अच्छी समझ और अच्छे व्यवहार से यह मन ठीक होने लगता है। हमारा और आपका यह परम कर्तव्य है कि सब कुछ का मोह छोड़कर हम अपने मन को सुन्दर बनायें क्योंकि इसी में सच्चा सुख है। आज इन्हीं शब्दों के साथ मैं अब अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

मानव तू कितना महान

रचयिता—श्री प्यारे लाल साहू
 मानव तू कितना महान।
 अपना मोल पहचान ॥
 कर्म करने को मिला नर तन।
 सुमिरन भजन को मिला मन ॥
 वेद उपनिषद् और पुराण।
 गीता बाइबिल और कुरान ॥
 सब तेरी ही रचना हैं महान।
 तूने ही दिया सारा ज्ञान ॥
 बन तुलसी लिखी तूने रामायण।
 मीरा बन किया गोपाल गुण गायन ॥
 बन कबीर लखाया आतम ज्ञान।
 तू ही तो नानक नाम जहान ॥
 मर्यादा सिखलाया राम बनकर।
 गीता गान किया कृष्ण बनकर ॥
 करुणा जगाया बुद्ध बनकर।
 प्रेम का पाठ पढ़ाया ईसा बनकर ॥
 नर भी तुम नारायण भी तुम।
 जीव भी तुम नारायण भी तुम ॥
 चेतन अमल सुखराशी तुम।
 आनन्द सिंधु निवासी तुम ॥
 मिली देव दुर्लभ काया।
 क्यों विषयों में भरमाया ॥
 ‘प्यारे गुरु के शरण न आया।
 निजस्वरूप क्यों बिसराया ॥

*सबल क्षमी निगर्व धनी, कोमल विद्यावंत।
 भव में भूषण तीन है, औरों सबै अनंत ॥
 संत सगा और गुरु सगा, अंत सगा है राम।
 कहें कबीर इस जीव को, तीन ठौर विश्राम ॥*

आदर्श जीवन

(1)

एक बार संत उस्मान अपने एक शिष्य के साथ एक गली से निकल रहे थे कि किसी घर में से मालकिन ने राख से भरा बर्तन गली में उड़ेल दिया, जिससे सारी राख संत उस्मान पर जा गिरी। संत ने अपना सिर और कपड़े झाड़े और शांत भाव से हाथ जोड़कर वे बुदबुदाये “दया प्रभु! तुझे धन्यवाद।” और आगे बढ़ गये।

तब शिष्य ने पूछा—गुरुदेव! आपने परमात्मा को धन्यवाद क्यों दिया? राख से आपके कपड़े खराब करने के कारण आपको मकान मालिक से शिकायत करनी थी।

संत ने उत्तर दिया—“मैं तो आग में जलाये जाने योग्य हूँ, और प्रभु ने तो राख से ही निर्वाह कर दिया। इस कृपा के लिए उन्हें धन्यवाद क्यों न दूँ।”

(2)

विनोबा जी का स्वभाव था कि उनके पास आये हुए पत्रों को वे सम्हालकर रखते थे और उचित उत्तर दिया करते थे। एक बार उनके पास गांधी जी का पत्र आया तो उन्होंने उसे पढ़कर चार टुकड़े कर दिये। पास में ही श्री कमल नयन बजाज भी बैठे थे। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ। वे अपने उद्वेग को दबा न सके और उस पत्र के टुकड़ों को जोड़कर पढ़ने लगे। वह पत्र विनोबा जी की प्रशंसा में लिखा गया था।

बजाज जी ने पूछा—आपने इतना सुंदर पत्र क्यों फाड़ दिया? इसे तो सम्हालकर रखना था। विनोबा जी ने उत्तर दिया—“यह पत्र मेरे लिए बेकार है, अतः मैंने इसे फाड़ दिया। पूज्य बापू ने अपनी विशाल दृष्टि से मुझे जैसा देखा, इस पत्र में लिख दिया है। पर मेरे दोषों की उन्हें कहां खबर? मुझे आत्मप्रशंसा बिल्कुल पसंद

नहीं! हां कोई मेरा दोष बतावे तो उसका मैं बराबर ख्याल रखूंगा।”

(3)

प्राचीन काल की बात है। गुरुकुल में बालक चरक को औषधि संग्रहण का काम मिला हुआ था। वे बहुत तन्मयता से औषधि संग्रहण और अन्य सेवा का कार्य किया करते थे। एक दिन काम करते समय अचानक चाकू से उसकी अंगुली कट गयी और रक्त बहने लगा। वे गुरु के पास जाकर अपनी समस्या बताये। गुरु ने कहा—यहां से पश्चिम दिशा में एक किलोमीटर दूर पर औषधियों का जंगल है। वहां जाकर मेरे बताये लक्षणानुसार औषधि खोज ले आओ।

गुरु की आज्ञा पाकर वे तुरंत औषधि लेने के लिए चल दिए। वहां कई घण्टों की बड़ी मशक्कत के बाद बताये लक्षणानुसार औषधि मिल पायी। उन्होंने लाकर गुरुदेव को दे दिया। गुरुदेव ने उसे पीसकर उसमें बांध दिया।

दूसरे दिन जब पट्टी बदलने की बात आई तब गुरुदेव ने चरक से कहा—बेटा चरक! जाओ अपनी औषधि आश्रम के पिछवाड़े से ले आओ। वे जाकर वहां से तुरंत ले आये। गुरुदेव ने पुनः उसकी मरहम पट्टी कर दी।

चरक ने कहा—गुरुदेव! औषधि पिछवाड़े में है परन्तु आपने मुझे कल दूर औषधियों के जंगल में क्यों भेज दिया? गुरुदेव ने कहा—“बेटा! वहां जाने पर तुम्हें अन्य औषधियों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई, क्या तुम उसको भूल गये?” वही बालक आगे चलकर गुरु आज्ञा पालन के बल पर आयुर्वेद जगत में महर्षि चरक के नाम से विख्यात हुए। जिनका नाम आज भी बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है।

प्रस्तुति—रमेश दास

धन रहे न जोबन रहे, रहे गाम न ठाम।
कबीर जग में जस रहे, कर दे किसी का काम॥
कबीर जब हम पैदा हुए, जग हंसे हम रोय।
ऐसी करनी कर चलो, हम हंसे जग रोय॥